यह सच है

सिद्धेश्वर

यह सच है

(काव्य-संग्रह)

सिद्धेश्वर

प्रकाशक

सरदार पटेल साहित्य प्रकाशन

दिल्ली

यह सच है

लेखक	:	**सिद्धेश्वर, संपादक 'विचार दृष्टि'** 'दृष्टि', यू-207, शकरपुर, विकास मार्ग, दिल्ली - 110092 फोन नं. - 011-22530652, 22059410

प्रकाशक	:	**सुधीर रंजन** प्रबंध संपादक, 'विचार दृष्टि' 'दृष्टि', यू-207, विकास मार्ग, शकरपुर, दिल्ली - 110092 फोन नं. - 011-22530652 मो. : 9811281443, 9899238703
©	:	**सिद्धेश्वर**
शब्द संयोजन	:	डी.टी.पी.प्वाइंट, खास महल मोड़ पटना-1, फोन नं. : 0612-3298703
मुद्रक	:	**कांशी एंटरप्राइजेज, दिल्ली (भारत)**
प्रथम संस्करण	:	वर्ष 2007
मूल्य	:	150 रुपए
I.S.B.N. No.	:	81-904100-6-7

Yeh Sach Hai
A Collection of Poems by : Sidheshwar
Price Rs. 150/- Only

समर्पण

दिवंगत आदरणीया भाभी गुलाबी देवी को,
जो हमारे परिवार की महज़ एक वरिष्ठ
सदस्या ही नहीं थीं, बल्कि संबंधों
की लहलहाती आग थीं जिनकी
उष्णता से पूस की ठंडक में
सिहरता था मेरा हठीला बचपन
और जिनके स्नेह की, प्यार
की बदौलत जिंदगी में
सदैव आगे बढ़ने की
मैंने प्रेरणा पाई।

– सिद्धेश्वर

कविता के संदर्भ में

कविता साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण तथा प्रतिष्ठित विधा है। ये समकालीन परिवेश तथा समाज के साथ गहराई से जुड़ी होती है। कविताओं के माध्यम से मनुष्य के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन की जटिल समस्याओं, उसकी कर्म संकुलता से घिरी जिंदगी की अनसुलझी गुत्थियों और प्रच्छन्न मनोभावों को अभिव्यक्ति प्रदान की जाती है। कवि अपने समकालीन यथार्थ से टकराता है और अपनी अनुभूतियों द्वारा यथार्थ की कलात्मक अभिव्यक्ति प्रस्तुत करता है। युग के परिवर्तन के साथ-साथ आज के भारतीय समाज में भी बहुत कुछ बिखराव और अनिश्चितता के दौर में परंपरागत आस्थाएँ, विश्वास और मूल्य टूट रहे हैं। बौद्धिक चेतना के परिणामस्वरूप विशेषकर मध्यवर्गीय समाज में विशेष उथल-पुथल मच रही है। व्यक्ति गंभीर रूप से असंतोष और असुरक्षा महसूस कर रहा है। इसका प्रभाव रचनाकार के चिंतन और लेखन पर भी गंभीर रूप से पड़ना स्वाभाविक है। वह परंपरागत प्रतिमानों की पुनः व्याख्या करते हुए तथा नई समस्याओं से जूझते हुए नई जिम्मेदारियों को उठाता है जिसके चलते कविता विधा भी प्रभावित हुई है। यही कारण है कि आज का कवि व्यक्तिगत रागात्मकता से जन-जीवन की ओर उन्मुख हुआ और उसकी रचनाओं में लोक जीवन की धड़कन आई। किंतु दुःखद स्थिति यह है कि जिन मानवीय मूल्यों से मानव की प्रतिष्ठा होती है वे व्यावसायिक हो गए। कवि भी सुविधावादी प्रवृत्ति तथा दिखावटी आत्मीयता से समझौता करता दिखाई दे रहा है। उनका सामाजिक एवं राष्ट्रीय प्रेम भी काल्पनिक और वायवीय होता जा रहा है।

आधुनिकता जिस प्रकार आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रवेश पा रही है, उससे वेशभूषा, फैशन और सामाजिक रीति-नीति से लेकर साहित्यिक भावभूमि भी प्रभावित है। काल दर्शन की दृष्टि से आधुनिकता एक तरह की समसामयिकता है जिसकी साहित्य में चर्चा मूल्य के स्तर पर ही होती है और

उसमें विभिन्न चेतना शक्तियों और प्रवृत्तियों का विवेचन होता है। डॉ. शंभूनाथ के अनुसार आधुनिकता वस्तुत: एक विशेष जीवन दृष्टि है, जो प्राय: समसामयिक सभ्यता और संस्कृति के माध्यम से अपने को व्यक्त करती है।

इस प्रकार हम पाते हैं कि आज कविता का भावबोध यथार्थवादी है, क्योंकि वह आज के युग की वास्तविकताओं से उद्भूत है। कवि अपने चारों ओर के वातावरण में जो कुछ देखता या अनुभव करता है, उसकी यथातथ्य अभिव्यक्ति के लिए प्रयास करता है। आज का कवि प्राय: दैनिक वास्तविकताओं का ही चित्रण करता है।

छायावाद से हटकर कविता ने प्रगतिवाद की कविता को जन्म दिया, और फिर प्रयोगवाद आया। इसी प्रयोगवाद की कविता को आज 'नई कविता' का नाम दे दिया गया है। यह नई कविता ही आज हिंदी साहित्य में अधिकांश लिखी जा रही है। सच कहा जाए तो कविता की सार्थकता इसी में है जब उसमें स्पष्टता और प्रांजलता पर विशेष ध्यान दिया जाए, कहीं कोई उलझाव नहीं, कहीं कोई कृत्रिमता नहीं, सीधे समझ में आ जाने वाली कविता। इसके अतिरिक्त मेरी समझ से वही कविता सराहनीय कही जाएगी जिसमें जीवन दृष्टि की व्यापकता और यथार्थ को ग्रहण करने की सौम्य क्षमता हो, मनुष्य की महिमा को पूरा सम्मान दिया गया हो। सशक्त कविता के लिए कविता की संवेदना और विचार-फलक की व्यापकता भी आवश्यक है। यही नहीं, उसमें मानवीय गरिमा का वर्चस्व कवि का प्रमुख सरोकार हो।

कहा तो यहाँ तक जाता है कि वही कविता श्रेष्ठ होती है, जो पाठक से सीधे-सीधे संवाद करती है। कविता का आस्वाद वहीं लिया जा सकता है जहाँ कवि और पाठक एक बिंदु पर मिलते हैं। जहाँ भी पाठक कृतिकार की आवृत्ति को, उसके शिल्प को, उसकी अनुभूति को उसी वातावरण में पकड़ लेता है वहाँ वह कृति पाठक के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेती है। आज जरूरत इस बात की है कि कविता अपनी बुनियादी विरासत से जुड़ा रहकर अपने सामाजिक और सामयिक सरोकारों की बृहत्तर भूमिका चुने। व्यवस्था जहाँ-जहाँ हमें काट रही है और जैसे-जैसे दिखे-अनदिखे तरीकों से समाज का

अहित कर रही है, इसकी समझ रखकर ही कविताओं को विरोध और विद्रोह की मुद्रा अपनानी चाहिए। आज देश में राजनीति और धर्म का जिस प्रकार मिला-जुला रूप भयावना होता जा रहा है, राजनीति में पनप रहे दोहरे चरित्र के जाल से निकल भागने का कोई रास्ता आमज़न खासकर युवा वर्ग को नहीं सूझ रहा है। आधुनिकता और पश्चिमी संस्कृति के गड्मड् होने से एक ओर जहाँ समस्याएँ बढ़ती जा रही हैं, वहीं मूल्य भी ध्वस्त होते जा रहे हैं, ऐसी विषम परिस्थिति के मद्देनजर मूल्यों के ध्वंस और नवनिर्माण की प्रक्रिया में रचनाकारों को विवेक का इस्तेमाल तो करना ही पड़ेगा अन्यथा कुएँ से निकलकर खाई में गिरने से कौन रोक सकता है। अतीत के गौरवगान का खोखलापन तो प्रकट हो चुका है। सत्ता का समाजशास्त्र रचने वाली जनता-जनार्दन राजनेताओं के पाखंड और व्यभिचार से बच नहीं पा रही है और जब नैतिकता और आदर्श हमारे संस्कारों में रचे-बसे हैं तब व्यवहार में यह आदर्श और नैतिकता हमारे कर्म को मर्यादित करती हैं, किंतु हमारी दमित इच्छाएँ तृप्ति के लिए मनोलोक का सहारा लेती हैं। रचनाकार अपनी अनुभूतियों के सहारे इन स्थितियों को शब्द-बद्ध कर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर सकते हैं।

कविता आत्मसंघर्ष से पैदा होती है। हिंदी में निराला और मुक्ति बोध की कविताओं में आत्मसंघर्ष की प्रवृत्ति देखने को मिलती है। प्रकाशक द्वारा कई बार रचनाओं को लौटाए जाने के बाद भी 'निराला' धैर्य नहीं खोते हैं और इस गंभीर उपेक्षा की वजह से उनमें क्रांतिकारी बीज अंकुरित होते हैं जिसे स्पष्ट रूप से अपनी पुत्री की याद में निराला द्वारा लिखे गए 'सरोज स्मृति' काव्य की इन पंक्तियों में देखा जा सकता है -

"लौटी रचना लेकर उदास,
ताकता हुआ मैं दिशा आकाश,
बैठा प्रांतर में दीर्घ प्रहार,
व्यतीत करता था गुन-गुनाकर

संपादक के गुण, यथाभ्यास,

पास की नोचता हुआ घास,
अज्ञात फेंकता इधर-उधर,
भाव की चढ़ी पूजा उन पर।"

'निराला' शरीर के खून को सुखाकर लिखते रहना ही जीवन का लक्ष्य मानते थे। इसी प्रकार 'अँधेरे में' और 'ब्रह्मराक्षस' मुक्तिबोध के आत्मसंघर्ष से उत्पन्न कविताएँ हैं। आत्मसंघर्ष के जरिए अपनी काव्य भाषा अर्जित करने वाले बाद के कवियों में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, धूमिल, श्रीकांत वर्मा, रघुवीर सहाय, डॉ. श्याम सिंह शशि, विजयदेव नारायण शाही, मंगलेश डबराल, केदारनाथ सिंह, कुँवर नारायण, नचिकेता आदि का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। कहना नहीं होगा कि इन सभी कवियों की काव्य चेतना में हम सामाजिक संदर्भ पाते हैं। मेरे ख्याल से वर्तमान परिवेश की कविताओं में वैयक्तिक जीवन के अतिरिक्त सामाजिक मुद्दों से जुड़ी व्यापकता का अभाव खटकता है। भक्ति काल के कवि के 'जनप्रिय' सामाजिक सरोकारों से जुड़े होने का असल कारण संत और सूफी कवियों में कबीर, रहीम, तुकाराम, भूलेशाह, बाबा फरीद और मलयालम में बरूवा या अक्का महादेवी ने जहाँ आत्मा और ब्रह्मा की बातें कीं, वहीं उन लोगों ने सामाजिक विद्रूपताओं पर भी चोट किया। इसलिए वे श्रेष्ठ भी हैं और लोकप्रिय भी। उनकी कथनी और करनी में कोई अंतर नहीं नजर आता, कारण कि वे अपने जीवनयापन के लिए छोटे-मोटे धँधे भी करते थे। मसलन कबीर जुलाहे थे और वे चरखा से सूत कातते थे, रैदास चमार थे और जूता सीने का भी काम करते थे। इसी कारण तुकाराम छोटे से व्यापारी थे। इन सबों के जीवन और कविता के बीच कोई विरोधाभास नहीं था, किंतु आज कवियों के जीवन पर जब हम नजरें दौड़ाते हैं, तो उनके जीवन और कविता में एक विरोधाभास पाते हैं। व्यक्ति और समुदाय के बीच संपूर्ण लय का अभाव दिखता है। हालांकि यह भी सच है कि विगत एक-डेढ़ दशक में उभरे युवा कवियों ने हिंदी कविता के न केवल वर्तमान परिदृश्य को प्रभावित किया है, बल्कि कविता के परिचित चेहरे को भी बदल डाला है।

सच कहा जाए तो कवि, चित्रकार, रचनाकार, पत्रकार आदि समाज के प्रतिनिधि प्रतिरोधात्मक धारा में बहने के लिए ही पैदा होते हैं तथा अपनी कविताओं के माध्यम से आमजन में सामाजिक चेतना भरने का काम करते हैं। सामाजिक और सांस्कृतिक अंतर्विरोधों के इस चुनौती भरे समय में जब मूल्य-मर्यादाएँ खण्डित होती दिख रही हैं, अनुशासन, संस्कृति व रिश्ते धीरे-धीरे गायब होते जा रहे हैं कविताओं में ही हमारा अस्तित्व सुरक्षित रह सकता है। आज जिस प्रकार हमारे समाज पर नैतिक संकट के काले बादल घुमड़ रहे हैं, प्रतिदिन उबलते घोटालों की बाढ़ में व्यक्तिगत नैतिकता के साथ-साथ सामाजिक उत्तरदायित्व भी डूबता जा रहा है ऐसी संकट की घड़ी में बुद्धिजीवी कहे जाने वाले विचारों से संपन्न कवियों की यह जवाबदेही बनती है कि वे अपनी रचनाओं के माध्यम से नैतिक चेतना का प्रकाश प्रदान करें, क्योंकि कवि समाज का एक अंग होते हुए भी अपनी एक विशिष्ट स्थिति रखता है। वह समाज के जीते हुए अनुभवों को ग्रहण करता है, जिससे उसकी मानसिक एवं बौद्धिक स्थिति का प्रस्फुटन होता है और अंततः वह परिवेश से प्रेरित होकर पुनः समकालीन जीवन को प्रभावित करता है। यही उसकी रचनात्मकता का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और जीवंत पहलू है।

मुझे आज ऐसा प्रतीत होता है कि कविता जन-सामान्य से ही दूर होती जा रही है जबकि आज की कविता में मनुष्य की अदम्य संघर्ष-यात्रा का चित्रण तो होना ही चाहिए साथ ही व्यक्तिगत अनुभवों तथा पीड़ाओं का चित्रण भी। कुछ इसी भाव से प्रेरित होकर मैंने अपनी कविता के माध्यम से जीवन में रस घोलने और उसे गति देने का प्रयास किया है, क्योंकि मेरी सामाजिक प्रतिबद्धता संघर्ष के अनुभवों का परिणाम है। सामाजिक सरोकारों से जुड़े रहने के कारण अनुभवों ने मुझमें एक ऐसी सामर्थ्य प्रदान की जिससे मैंने सामाजिक परिवेश की मानवीय पीड़ा को बखूबी समझा, परखा और अपनी रचना में अभिव्यक्त कर पाया। इसलिए लेखन शैली की उत्कृष्टता की अपेक्षा लेखन विषय की गुणवत्ता को मैंने अधिक महत्त्व देना पसंद किया है और सामाजिक सरोकारों को ही मैंने लेखन विषय का सर्वोत्तम स्रोत माना है, क्योंकि समाज के करीब में रहकर समाज के लोगों को मैंने नजदीक से पढ़ा है और उनकी पीड़ा को देखा है। इसलिए मेरे शब्द

और कर्म एक दूसरे से अनुप्राणित होते हैं।

इस संग्रह की क्रमांक 38 तक की कविताएँ मार्च 1992 से मार्च 1997 की उस पाँच वर्ष की अवधि में लिखी गई हैं, जिसमें देश राजनीतिक उथल-पुथल और सांप्रदायिकता के दौर से गुजर रहा था। किंतु शेष कविताएँ वर्ष 2004 में उस वक्त लिखी गईं जब मैं 23 अगस्त से 27 अगस्त के बीच दिल्ली में आयोजित राष्ट्रीय एकता रैली कार्यक्रम को लेकर दिल्ली-अहमदाबाद मेल में सफर कर रहा था या फिर रेलवे के जनसंपर्क अधिकारी कविवर कमल किशोर दुबे 'कमल' के सौजन्य से अहमदाबाद जंक्शन स्थित रेलवे के अतिथि गृह में ठहरा था। स्वाभाविक है कि वक्त की पुकार ने हमारी लेखनी को भी प्रभावित किया हो। जो हो, तबसे तकरीबन दस साल गुजरने के बाद वर्ष 2007 में रचनाओं को समाहित कर काव्य-संग्रह के प्रकाशन की बात मन में आई। ऐसा भी नहीं कि इसके पूर्व काव्य-संग्रह का प्रकाशन नहीं हुआ हो। दरअसल इस बीच संयोग कुछ ऐसा बैठा कि जापानी हाइकु तथा सेन्र्यू विधा में समयानुसार रचना करना और उसे प्रकाशित करने में हमारे शुभेच्छु साहित्यकारों का प्रोत्साहन अधिक मिला जिसके परिणामस्वरूप हाइकु काव्य संग्रह के रूप में 'पतझर की सांझ' तथा सेन्र्यू काव्य-संग्रह के रूप में 'सुर नहीं सुरीले' और 'जागरण के स्वर' का प्रकाशन पहले हो गया। यह तो कहिए कि विगत 24 अप्रैल, 2004 को गुरुगोविंद सिंह कॉलेज, मगध विश्वविद्यालय के पूर्व हिंदी प्राध्यापक प्रो. (डॉ.) दीनानाथ 'शरण' जी मेरे मित्र राजभवन सिंह जी के साथ जब शिष्टाचारवश पटना के पुरन्दरपुर स्थित मेरे 'बसेरा' निवास पहुँचे, तो उनकी उपस्थिति के साथ-साथ विद्वता का लाभ लेने के ख्याल से इन रचनाओं को मैंने उनके समक्ष प्रस्तुत किया। इस क्रम में एक-दो शृंगारिक कविताओं का मैंने पाठ भी किया जिसकी उन्होंने मुक्त कंठ से सराहना करते हुए शीघ्रतिशीघ्र इसके संग्रह के प्रकाशन की सलाह दी। बस फिर क्या था मैंने दूसरे ही दिन से प्राक्कथन लिखना प्रारंभ कर दिया और इसके प्रकाशन की योजना मेरे मन में आने लगी और उसी दिन यह बात सामने आई कि इसकी भूमिका डॉ 'शरण' साहब ही लिखें। मेरी इच्छा के आलोक में राजभवन बाबू

के इस प्रस्ताव को डॉ. 'शरण' ने सहर्ष स्वीकृति प्रदान की और उन्होंने इसकी भूमिका लिखकर मुझे कृतार्थ किया।

संग्रह की कविताओं में राजनीति भी है पर कविता राजनीतिकता के पास तक नहीं फटकी है। रचनाओं में यथार्थ है, किंतु उसने संस्कृति के अंचल का छोर नहीं छोड़ा है।

समकालीन समाज और साहित्य संक्रमण के गंभीर दौर से गुजर रहे हैं। भूमंडलीकरण के अंतर्गत प्रौद्योगिकी और तकनीक की आक्रांतिकता तथा सामाजिक-राजनीतिक मूल्यों के क्षरण के बीच साहित्य की प्राय: सभी विधाएँ एक विचलित करने वाले रचनात्मक द्वंद्व में पड़ गई हैं। चिंता का विषय यह है कि मूल्यों के इस शून्य को भरने के लिए हमने जिस विज्ञानवाद-उद्योगवाद को अपनाया है उसे ही पूर्ण मान लिया है। पर सच तो यह है कि जीवन के लिए प्रगतिशील मूल्यों के साथ भौतिक समृद्धि की आवश्यकता है। आज जरूरत इस बात की है कि समाज के हाशिए पर खड़े गरीब, दलित, किसान, मजदूर की प्रगति और सामाजिक न्याय सुनिश्चित किया जाए। इस संग्रह में हमारा यह प्रयास रहा है कि समाज की विसंगतियों, राजनीतिक जघन्यताओं, व्यक्ति की कुंठा, अभाव और विवशता आदि को अभिव्यक्ति प्रदान कर उन्हें भावना से परे विचारों के सीखचों पर परखें। इसलिए इस संग्रह की प्राय: अधिकांश कविताओं के स्वर मूलत: वैचारिक हैं।

आज हमारे पास लेखकों की भरपूर रचनाएँ प्रकाशित होकर आ रही हैं, संचार सामग्रियों और नेताओं के भाषणों से अटा पड़ा है, लेकिन सबको सार्थक कहना बेमानी होगा। इसलिए हमने अपनी रचनाओं में शब्दों से परे जाकर-उनके आवर्तन-विवर्तन से आगे कुछ करने का आह्वान भी किया है, क्योंकि आज व्यक्ति पूर्णत: अपने स्वार्थों में अनुलिप्त है, वह अपने से बाहर, अपने से परे कुछ देखता ही नहीं, सोचता ही नहीं। हमारी स्पष्ट धारणा है कि हम मुनष्य इसलिए हैं कि अपने दूसरों की संवेदनाओं तथा उनके दु:ख-दर्द तक पहुँच सकें, उसकी पीड़ा और चीख-पुकार को सुन सकें और एक समरस एवं सहजीवनी की भूमिका में अपने को प्रस्तुत कर सकें। किंतु संपूर्ण समाज में

आज द्वंद्व, कटुता, अविश्वास, नफरत और हिंसा का वातावरण देखने को मिल रहा है, शोषण, भ्रष्टाचार, विषमता, षड्यंत्र और अनेक गैर इंसानियत की गतिविधियाँ दृष्टिगोचर हो रही हैं। ऐसी विषम घड़ी में हमने कोशिश की है कि परस्पर जुड़ने की स्थितियाँ कायम हों और इन स्थितियों को जाग्रत एवं सक्रिय करने का हमारी रचनाएँ अक्षय प्रेरणा-स्रोत बनें, क्योंकि कला और कविता का यही लक्ष्य है। मुझे नहीं मालूम कि हमारी कविताएँ समाज के लोगों में वर्तमान स्थितियों से मुकाबला करने और उनमें चेतना जाग्रत करने का कहाँ तक प्रेरणा-स्रोत बन पाई हैं। यह तो हमारे पाठक और आलोचक ही बता पाएँगे। मात्र शब्दों की जगाली न कर हमने तो समाज के प्रति अपने दायित्व को समझते हुए सकारात्मक व्यावहारिक कुछ करने और बदतर एवं भयावह स्थितियों के मद्देनजर लोगों में आशा का संचार करने की चेष्टा की है।

जब मनुष्य का समाज ही न होगा, समाज में मानवता ही न होगी तब विज्ञान और अर्थतंत्र का कोई मतलब ही नहीं रह जाता है। विज्ञान और अर्थतंत्र की शक्ति पाकर मनुष्य जब दुर्दांत पशु या राक्षस के रूप में रूपांतरित होने के रास्ते पर जाता नजर आए और क्षमा, करुणा, त्याग, सेवा, अहिंसा, सहिष्णुता समरसता जैसे मूल्यों से वह सर्वथा दूर होते दिखे तो रचनाकारों का यह दायित्व हो जाता है कि इसे रोकने के लिए रचनाकार अपनी धारदार कलम चलाकर मानवता को बचाए अन्यथा मानवता ही पराजित हो जाएगी। विकृत्तियों से मुक्ति की हमारी संकल्पना रही है और मानव का समष्टि के बीच समष्टि के साथ श्रेष्ठ व्यवस्था और श्रेष्ठ मानसिकता में जीते हुए पूर्णता की ओर अग्रसर होने का हमारा 'जीवन' रहा है।

मैं यह मानकर चलता हूँ कि जीवन और अपनी जड़ों से एक गहरे लगाव की वजह से ही मुझमें सक्रियता आई है और कुछ लिखने की मैंने ऊर्जा पाई है। नगर एवं महानगर में एक लंबा और समृद्ध जीवन जी कर समाज से मैंने जो कुछ हासिल किया है उसे समाज के लोगों में बाँटकर मैं अपने दायित्व का निर्वहन करूँ। हमारे लेखन का बीज या उत्स भी हमें परिवार-समाज से प्राप्त हुआ है। शायद इसी का परिणाम है कि हमारे भीतर भी एक जोश और

उबाल पैदा हुआ जिससे समाज और उसके हालात को देखने की मेरी दृष्टि बदली। इस बीच नगरों-महानगरों में अनेक साहित्यकारों से मेरा परिचय हुआ और उनका मुझे सान्निध्य मिला। उनके अपनत्त्व के चलते मेरे भीतर जीवन की एक रसात्मक वृत्ति और उदात्त जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा स्थापित करने की मुझमें लालसा जगी। आज मैं अपने को इस लायक समझता हूँ कि निरंतर लिखते हुए और आने वाली पीढ़ी को अपने स्नेह से सींचते हुंए मैं समाज के बीच में हूँ जिसमें आज के अतिबुनियादी अहंकार विद्वेष और उपेक्षा भरे माहौल में यह सुख हमारे लिए कुछ कम नहीं।

समकालीन कविता के संदर्भ में मुझे एक और बात यह कहनी है कि अछांदसिक विधा के हजारों कवि विभिन्न विषयों पर विभिन्न प्रकार से विभिन्न शैलियों में हजारों-हजार तरह के विचार अपने चिंतन-मनन के द्वारा समाज के समक्ष परोस रहे हैं। उनकी रचनाओं में पीड़ा और संवेदनाओं के लाखों मन हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अलोकप्रिय होने पर भी अछांदसिक कविता के केंद्र में आज पाठक कम, लोक और समाज ज्यादा है। इस लिहाज से उसे नकारा नहीं जा सकता है। कविता और समाज के बीच दूरी भले ही बढ़ रही है, लेकिन आज की कविता समाज का पीछा करती हुई चल रही है। कविता से कटने वाला समाज अपना नुकसान स्वत: कर रहा है। इसलिए युग परिवर्तन की इस सांध्य वेला में हम प्रबुद्धजनों का कुछ विशेष कर्त्तव्य होता है। समाज व देश में सब ओर से लगी आग बुझाने के लिए समर्थ और सक्षम व्यक्तियों को आवश्यक कदम बढ़ाना ही होगा अन्यथा चिरकाल तक पश्चाताप एवं प्रताड़ना की आग हमें जलाती रहेंगी। आज के अज्ञान-ग्रस्त मस्तिष्क का सुधार आदि हम अपने लेखन के द्वारा न कर सकें तो आज की विडंबना उलझे हुए मनुष्य को और भी उलझनों में फँसाती चली जाएगी। इसकी उपेक्षा न करके हम रचनाकारों को इसे रोकने के लिए कुछ न कुछ सामूहिक उपाय करने चाहिए। मौजूदा समाज का कण-कण परिवर्तन की माँग करता है। परिवर्तन आज की अनिवार्य-अपरिहार्य आवश्यकता है। युग परिवर्तन की पृष्ठभूमि है-जनजागरण। विचारशील व्यक्ति सदा ही लोकमंगल और

जनजारगण के लिए बड़े-बड़े कठिन कार्य करने में तत्पर होते रहे हैं। समय का तकाजा है कि अपने समाज व देश की उज्ज्वल संस्कृति को, व्यक्ति को पतित बना देने वाले कुविचारों एवं संस्कारों का निराकरण करने के लिए आम जन में चेतना जागृत की जाए और जन-जागृति के लिए कलम उठायी जाए। जनमानस के नव निर्माण से ही सद्प्रवृत्तियों का उदय, सृजन एवं अभिवर्धन होगा, जिसके आधार पर सृजनात्मक एवं संघर्षात्मक कार्यक्रमों के फलने-फूलने की परिस्थितियाँ बनेंगी। समाज में बदलाव के लिए हमें कितने ही महत्त्वपूर्ण कार्य करने पड़ेंगे, पर वे होंगे तभी जब करने वालों में इस तरह की निष्ठा-प्रेरणा-प्रवृत्ति एवं लगन उत्पन्न हों। हमारा यह प्रयास है कि संकोचशीलता और संकीर्णता की परिधि से बाहर निकलकर सक्रिय रूप से कुछ किया जाए। इतिहास भी साक्षी है कि ऐसे वक्त में हर प्रबुद्ध और विवेकशील को सक्रिय रूप से आगे आना पड़ा है। यह संग्रह हमारी उसी सोच का प्रतिफल है।

मैं आभारी हूँ 'लोहिया चरित मानस' के रचयिता श्री राजभवन सिंह तथा सहृदयी रचनाकार श्री युगल किशोर प्रसाद का, जिन्होंने न केवल इस रचना के नाम के चयन में अपने सुझाव प्रस्तुत किए, बल्कि कई रचनाओं के शब्दों में हेर-फेर कर इसे सजाया-संवारा। प्रो. (डॉ.) दीनानाथ 'शरण' के प्रति हम कृतज्ञ हैं, जिन्होंने इसकी भूमिका लिखकर इसे स्तरीय बनाया। दिल्ली में हमारा मार्गदर्शन कर रहे गीति रचना के सशक्त हस्ताक्षर कविवर मधुर शास्त्री तथा पटना के कविवर नचिकेता ने क्रमश: शुभाशंसा एवं अभिमत लिखकर हमारे मनोबल को बढ़ाया है, हम आभारी हैं उनके।

श्रीमती सुनयना ने इस कृति की पांडुलिपि को कम्प्यूटर पर शब्द-संयोजन किया जिसके लिए वह धन्यवाद की पात्र हैं।

❖

7 सितंबर, 2004
श्रीकृष्ण जन्माष्टमी
'बसेरा', पुरन्दरपुर,
पटना- 800 001
दूरभाष : 0612-2228519

संपादक, 'विचार दृष्टि'
'दृष्टि', यू-207, शकरपुर
विकास मार्ग, दिल्ली-92

अभिमत

मौजूदा संसार की वस्तुपरक अभिव्यक्ति

मानवीय संकट जितना अधिक गहरा होता जाता है और मानवीय संवदेना के क्षय की रफ्तार जितनी अधिक तेज होती जाती है, समाज में और मनुष्यों के वास्ते कविता की अहमियत और अनिवार्यता उतनी ज्यादा बढ़ती जाती है, क्योंकि कविता हर हाल में, मानवीय संवेदना को अभिरक्षा ही नहीं प्रदान करती, प्रत्युत उसे नया जीवन भी देती है। आज के बढ़ते उपभोक्तावाद के प्रभाव से सबसे अधिक क्षतिग्रस्त मानवीय संवेदना ही हुई है। सिद्धेश्वर की कविताएँ इसी क्षतिग्रस्त और लहूलुहान मानवीय संवेदना की प्रतिरक्षा में लड़ी जा रही प्रतिरोधात्मक लड़ाई के घोषणापत्र हैं।

अपने समय, समाज और सांस्कृतिक पर्यावरण और परिवेश से सार्थक संवाद करती सिद्धेश्वर की ये कविताएँ दरअसल जीवन और सृष्टि के प्रति अटूट आस्था और अनुराग के महत्त्वपूर्ण होने के तर्क की तलाश करती है। कवि को मालूम है कि आज की अमानवीय व्यवस्था हमारे मूल्य-संसार को ध्वस्त करने की फिराक में है अथवा ध्वस्त कर रही है तथा हमारी जीवन-पद्धति को भी लगातार नष्ट कर रही है। ये कविताएँ आज के बढ़ते बाजारवाद और उदारीकरण की इन्हीं गलाकाटू मार-काट, छीना-झपटी और मौकापरस्ती के खिलाफ संघर्षशील मनुष्यों की सकारात्मक कार्रवाइयों को गोलबंद करने का प्रयत्न करती हैं। इसलिए इन कविताओं में आधुनिक जीवन और जगत की अनगिनत हलचलों, हरकतों और तनावों के तलस्पर्शी प्रसंग एवं परिप्रेक्ष्य के निदर्शन होते हैं। इनमें सामाजिक और सांस्कृतिक विडंबनाओं की अमानवीय अनुगूँजे और आहटें सुनाई पड़ती हैं। सिद्धेश्वर आज के 'आर्थिक सुधार' और 'अँधविश्वास' के ठेकेदार धर्म के 'घूंघट' में 'जीवन का सच' ढूँढ़ते दृष्टिगोचर

होते हैं। इन्हें 'लोकतंत्र की रक्षा में' खड़ी 'महंगाई के तेवर' देखकर 'खतरों से घिरी कलाकार की आजादी' की अमानवीय चीख सुनाई देती है। वे न तो इन उपलब्धियों पर 'फिदा' होते हैं और न ही अपनी 'खत्म होती जवाबदेही' से किनाराकशी ही करते हैं। इसके विपरीत 'बदरंग हो रहे फूलों के रंग' के मर्म को पहचानकर 'जनता .का जागरण' बनने का निमित बनते प्रतीत होते हैं।

सिद्धेश्वर की कविताएँ समकालीन कविता के एक बहुत बड़े हिस्से की भांति अर्थ की लय, बातचीत की लय और विचारों की लय के पर्दे में छिपकर अर्थहीनता की सरहद छूते अमूर्त्तन की गिरफ्त में आने से वंचित हैं। अनुभूति की सघन संरचना के बावजूद सिद्धेश्वर की काव्यभाषा सरल, सहज, सुगम और पारदर्शी है। वह नवीन संवेदना के बहाने प्रतिसंसार का प्रतियथार्थ रचने का ढकोसला नहीं करते, वरन् सीधी-सादी भाषा में मौजूदा संसार की वस्तुपरक अभिव्यक्ति करते हैं। इन्हें न तो कला से परहेज है और न ही राजनीतिक सचेतनता से। वह जानते हैं कि कविता रचनाकार से पूरा जीवन, पूरी सच्चाई और समूची नैतिकता माँगती है तथा शब्दों का कोई अलग अर्थ नहीं होता, वे उन वस्तुओं और वास्तविक दुनिया का प्रतीक है, जिनके वास्ते उनका व्यवहार हुआ है।

सिद्धेश्वर जी की कविता भारतीय समाज में नब्बे के दशक से जारी उथल-पुथल की अपरिहार्य परिणति है। इस दौर ने सामाजिक व राजनीतिक चेतना में नई गहराइयाँ और ऊँचाइयाँ उत्पन्न की है। इस संग्रह की कविताओं में वह चेतना अभिव्यक्त हुई है। ''जनता का जागरण'' शीर्षक इनकी कविता की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

राज की सनातन परंपरा है
जनता को छलावे, नींद
और बेहोशी में रखना
जैसे चोर को
उजाला नहीं सुहाता है

वैसे ही शासन को जनता का
जागरण नहीं भाता है
क्योंकि,
जनता के जागरण से
उनके मनमानी करने पर
अँकुश लगने की
संभावना बढ़ जाती है।

हिंदी साहित्य परिवर्तन की एक व्यापक प्रक्रिया से गुजर रहा है। कविता में सामाजिक व राजनीतिक तबकों का प्रतिनिधित्व कर रहे लोग केवल अपने हितों के प्रति सचेत हैं और अपनी सामाजिक एवं राजनीतिक भूमिका का निर्वाह कर पाने में असमर्थ हैं। इस संग्रह की विशेषता यह है कि कवि अपने दायित्व के प्रति सचेत है। आखिर तभी तो इनकी कविताओं में सामाजिक व राजनीतिक यथार्थ का चित्रण अधिक प्रमाणिकता के साथ किया गया है। कवि उसकी ऐसी कलात्मक प्रस्तुति करने में सफल रहा है कि एक दृश्यांतर उपस्थित हो गया है, क्योंकि सभी स्थापित मूल्य-मर्यादाओं पर संदेश व अँधविश्वास व्यक्त करना इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। देखें इनकी 'अँधविश्वास' शीर्षक कविता की इन पंक्तियों को -

ये कर्मकांडी
सदियों से
कड़वी घुट्टी
अँध-विश्वास की
पिलाते आए
और मीठा जहर
पिलाकर ठगते आए।

संग्रह के कवि ने अपनी नैसर्गिक प्रतिभा और धारदार लेखनी द्वारा जहाँ, 'हिंदी वाले ही दोषी हैं', 'यह सच है', 'जीवन का सच', 'कुछ नया लिखिए', 'राष्ट्र-चेतना', 'बढ़ती आबादी', 'जहरीला नाग', 'नेताजी', 'एक नई दिशा की

तलाश' तथा 'संसदीय लोकतंत्र' जैसी कई यादगार कविताएँ साहित्य को दी हैं, वहीं राजनेताओं की परिभाषा को भी नए अंदाज में गढ़ा है जिससे यह संग्रह पठनीय के साथ-साथ संग्रहणीय भी बन गया है। इसलिए सिद्धेश्वर जी को अच्छी तरह से जानना और समझना आज हमारी एक गंभीर जरूरत है, क्योंकि कविताएँ निश्चय ही पाठक की संवेदना में एक ऐसा आस्वाद छोड़ जाती हैं, जो आज के बेहद औपचारिक समय में लगभग दुर्लभ हो गया है। इन कविताओं के पढ़ने से यह तो साफ दिखता है कि इस संग्रह का कवि अपने समय और समाज के प्रति जिम्मेदार और ईमानदार है।

एक बात तो तय है कि सस्ती लोकप्रियता बटोरने के लिए लिखी गईं 'सनसनीखेज' एवं 'मसालेदार' कृतियाँ कभी भी कालजयी नहीं हो सकतीं। बात चाहे 'राम की शक्ति पूजा' की हो या फिर 'हरिजन गाथा' की, 'कामायनी' से 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' तक सारी कृतियाँ यदि कालजयी हुई हैं तो उनके पीछे मूल्यों का, मानवता का, सच्चाई का और कवि की ईमानदार आत्मा की शक्ति है। सिद्धेश्वर जी की इन कविताओं में भी उनकी आत्मा का बल बोलता है। आक्रामकता, सत्ता पर चोट, राजनीति व समाज पर व्यंग्य का झंडा इन्होंने गाड़ा है अपनी कविताओं में, जिसे 'जहरीला नाग' शीर्षक कविता की इन पंक्तियों में देखा जा सकता है-

अब तो इसे डसने की
आदत भी है बदल डाली
आदमी को डसने के बदले
वह देश को ही है डस रहा
और कई शक्लों में वह
दिखाई है दे रहा।
कभी सांसद व मंत्री
तो कभी विधायक
कभी पूर्व सांसद
तो कभी संत्री।

कुल मिलाकर देखा जाए तो इस संग्रह की कविताओं में छिपे सवाल बहुत ही सच, जायज, अर्थपूर्ण और प्रासंगिक हैं जिनका उत्तर प्रत्येक व्यक्ति, समाज और सजग लोगों को खोजना है। संग्रह की कविताएँ बहुत मार्मिक और संवेदना को झकझोरने वाली हैं, क्योंकि ये इस देश के तेजी से हाइटेक की ओर बढ़ते फर्राटा दौड़ के बीच असली जिंदगी का आइना दिखलाती हैं। निष्ठुर संवेदनहीनता के पक्ष को शिल्प में उजागर करना ही रचना कौशल है। आज के आधुनिक और उपभोक्तावादी संस्कृति के दौर में जिस प्रकार जिंदगी के दांव लगते जा रहे हैं, बाजार की होकर मनुष्य के मस्तिष्क में राज करने लगा है, ऐसी स्थिति में कवि ने इन सभी बातों को एक विशेष शिल्प के जरिए पाठकों के समक्ष लाने का प्रयास किया है। सचमुच आज ऐसे ही प्रयास की जरूरत है। कारण कि विकास की गलाघोंटू प्रतिस्पर्धा के युग में दम तोड़ती मानवता दृष्टिगोचर होती है कवि की इन कविताओं में जिसके लिए वे हमारी हार्दिक बधाई के पात्र हैं। गद्य और पद्य दोनों विधाओं में इनकी कलम अनवरत रूप से चलती रहे, यही हमारी कामना है।

❖

नचिकेता
कवि एवं समीक्षक

पथ संख्या-1,
आजाद नगर,
कंकड़बाग, पटना-20

शुभाशंसा

यह भी सच है

कवि सिद्धेश्वर के कविता संग्रह 'यह सच है' को पढ़कर लगा कि वास्तव में कविकर्म बहुत कठिन है और आज के वातावरण में वह और भी कठिनतर हो गया है। इसके अनेक कारण कवि ने अपने प्राक्कथन में उल्लिखित किए हैं। केवल साहित्य ही क्यों, कला का प्रत्येक रूप सामाजिक समस्याओं और मानवीय मूल्यों की स्थापना में संलग्न रहता है। कवि भी एक सामाजिक प्राणी है और समाज की समस्याओं और आंतरिक पीड़ाओं का आनुभूतिक साक्षी होता है और व्याख्याता भी। इन आदर्श स्थापनाओं के लिए जो संघर्ष करते रहे उनकी कला ने न केवल वर्तमान को, अपितु भविष्य की संभावित स्थितियों को प्रभावित किया इसीलिए वे कालजयी कवि-कलाकार कहलाए। कैसी विडंबना है कि स्वयं को कवि कलाकार के रूप में स्थापित करने के लिए जोड़-तोड़ में कसा कोई कालजयी सिद्ध नहीं हो पा रहा है। इसका उत्तर सिद्धेश्वर स्वयं दे रहे हैं - ''दु:खद स्थिति यह है कि जिन मानवीय मूल्यों से मानव की प्रतिष्ठा होती है वे व्यावसायिक हो गए। कवि सुविधावादी प्रवृत्ति तथा दिखावटी आत्मयिता से समझौता करता दिखाई देता है। उनका सामाजिक एवं राष्ट्र-प्रेम भी काल्पनिक और वायवीय होता जा रहा है।''

सिद्धेश्वर जिस कविता को वास्तविकता से उद्भूत मानते हैं उसकी प्रभावहीनता उसकी व्यर्थता का भी बोध कराती है। कविता की जो परिभाषा सिद्धेश्वर दे रहे हैं उसके गुण होते हुए भी वह पाठक को तृप्त नहीं कर पा रही है और पाठक उसके प्रति उदासीन दिखाई देता है। मनुष्य की महिमा को गा देने भर से मनुष्य नहीं जागता। इस मनुष्यता को भीतर से अनुभव करने या कविता पाठक या श्रोता से आत्मीय संबंध जोड़ पाती है। मेरा व्यक्तिगत अनुभव

है कि निराला जब जीवित थे तब उनकी आत्मीय पीड़ा को 'ड्रामा' का नाम दिया गया। उन्होंने निराला की उपेक्षा कर स्वयं को महिमामंडित करने के अनेक प्रयत्न किए, सफल भी हुए। पुरस्कार अर्जित किए। उन्हें महत्तम सिद्ध करने के लिए इतिहास को क्रूर बना दिया गया, परंतु आज निराला का कद इतना ऊँचा उठ गया है कि वे लोग बौने दिखाई पड़ते हैं। निराला जैसा कवि ही कालजयी होता है। जैसे दिनकर के बाद कोई राष्ट्रकवि ही नहीं हुआ वैसे ही आज कालजयी कवि का अभाव है।

सिद्धेश्वर ने कविता का सरलतम व्याकरण अपनाते हुए उसे जीवन के यथार्थ तक ले जाने का प्रयत्न किया है। इसीलिए एक संभावना के साथ वे कहते हैं –

"जनता को तो बस
पेट में रोटी,
तन पर वस्त्र,
सर छुपाने के लिए
एक घर चाहिए
इसके लिए वह इंजतार करती है,
पर जब जनतंत्र के नाम
सिर्फ उसे लूटा जाए
तो खूनी क्रांति की संभावना
अवश्य बढ़ जाती है।"

यथार्थ की प्रांसगिकता इतनी भर है कि वह रोटी, कपड़ा और मकान की व्यवस्था करा दे। साहित्य की उपयोगिता का इतना सस्ता परिभाषीकरण जीवन की गंभीरता को किस गर्त्त में ढकेल रहा है इस पर भी विचार होना चाहिए। रोटी, कपड़ा, मकान की आवश्यकता से नकारा नहीं जा सकता, परंतु यहाँ सोचना यह है कि क्या मानवीय मूल्यों की सीमा यहीं तक सीमित है?

कैसा आश्चर्य है कि अँधविश्वास के खोखलेपन को उजागर करने के

कितने प्रयत्न हो रहे हैं, परंतु स्वतंत्रता के इतने वर्षों में भी हम मनुष्य को अँधविश्वास के प्रति आवश्वस्त नहीं बना पाए। सिद्धेश्वर भी कहते हैं –

"........ सदियों से
पाखंड के जाल में
फँसाए रखने वाले
इन ढोंगियों से
सावधान रहिए
और इनपर
कड़ी नजर
रखने के लिए
अपनी आँख
खुली रखिए।"

प्रश्न तो यह है कि आँखें खोलने के प्रयत्न में भी पाखंड है, स्वार्थ है, भटकाव है, मुझे अपनी पंक्ति याद आ गई –

जीवन की भाषा समझाएँ कैसे,
जीवन में दर्शन नहीं, प्रदर्शन है।

साहित्य स्पष्ट उपदेष्टा नहीं होता, परंतु वह भीतर अपनी पैठ बनाता है। इसका कारण फिर वहीं उसी बिंदु पर आकर ठहरता है। सिद्धेश्वर ने अपने प्राक्कथन 'कविता के संदर्भ में' कहा है – आज कवियों के जीवन पर जब नज़रें दौड़ाते हैं, तो उनके जीवन और कविता में एक विरोधाभास पाते हैं। इसके लिए उन्होंने भक्तिकाल के भक्त एवं सूफी संतों की चर्चा की, जो अपने जीवन-यापन के लिए अपना काम धंधा करते थे और सामाजिक विद्रूपताओं पर चोट करते थे। उनकी कथनी और करनी में अंतर नहीं था, परंतु आज व्यक्ति और समुदाय के बीच संपूर्ण लय का अभाव दिखता है। कविता का चेहरा बदला दिखाई देता हैं, परंतु भीतर का कालुष्य नहीं मिटा यह भी सच है।

सिद्धेश्वर ने कविता के माध्यम से जीवन में रस घोलते हुए उसे गति देने

का प्रयास किया है। इनकी सामाजिक प्रतिबद्धता संघर्ष के अनुभवों का परिणाम है जो कविता में यत्र-तत्र अपनी गूँज देता है। 'दहेज का दर्द', 'फिर बसंत आया', 'जीवन का सच', 'वी0 आई0 पी0', 'स्थिरता', 'एक सवाल' जैसी अनेक रचनाएँ हैं, जो परिस्थिति की विषमता को स्पष्ट करती हैं। इनकी सपाट बयानी कविता को आम आदमी तक ले जाने में समर्थ है। यह कविता के लिए कविता नहीं है इसलिए सिद्धेश्वर स्पष्ट करते हैं -'लेखन शैली की उत्कृष्टता की अपेक्षा लेखन-विषय की गुणवत्ता को मैंने अधिक महत्त्व देना पसंद किया है और सामाजिक सरोकारों को ही मैंने लेखन-विषय का सर्वोत्तम स्रोत माना है।'

यह सर्वथा सत्य है कि कविता जीवन के लिए है इसलिए जीवन जिस परिवेश में सांस ले रहा है वही धड़कन कविता में गंजित होगी और होनी चाहिए। इस संग्रह की कविताएँ सीधी, सरल और स्पष्ट अभिव्यक्तियाँ हैं। कवि ने ईमानदारी के साथ अपना कवि कर्म निभाया है। ऐसी स्थिति में शिल्प पर टिप्पणी करना व्यर्थ है। भाषा उनकी अपनी है जिसे वह अपने भावानुसार सुविधापूर्वक मोड़ लेते हैं। संग्रह के प्राक्कथन 'कविता के संदर्भ में' अपने आप में कवि का समालोचनात्मक आत्मकथ्य है। यह संग्रह हिंदी के छंद मुक्त काव्यों को परंपरा में अपना विशिष्ट स्थान बनाए - यह मेरी शुभकामना है। कवि का स्वर राजनीति की गर्माहट का भी अनुभव करता है इसलिए उसमें साहित्य का वैशिष्ट्य घुल गया है। युगानुरूप संग्रह निश्चय ही पठनीय है। मुझे विश्वास है कि काव्यजगत में इसका स्वागत होगा। इसका पृथक व्यक्तित्व है-यह भी सच है।

❖

'मधुर भवन'
एस-484 ए, विवेक मार्ग,
स्कूल ब्लॉक, शकरपुर,
दिल्ली-92

मधुर शास्त्री
22 सितंबर, 2004

भूमिका

आज की सच्चाइयों को उजागर करती कविताएँ

हिंदी कविता के इतिहास में 'छायावाद-युग' सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और गौरवमय अध्याय है। यही वह समय था जब हिंदी कविता स्वर्ग-लोक की अप्सरा-सी इस धरती पर उतरी और नये-नूतन आभूषणों से सुसज्जित, नयी-नयी, नाज-नज़ाकतों के साथ प्रकृति-जन्य सुंदरता और स्त्री जनोपम शालीनता लेकर यों दिखायी दी जैसे -

''सूधो पाँय न धर परत,
सोभा हीं के भार!''

'यह सच है' के कवि सिद्धेश्वर जी की आरंभिक दो कविताओं को पढ़ते समय उसी युग के भ्रम में मैं पड़ गया, परंतु तुरत ही सँभल भी गया कि यहाँ तो 'स्वर्ग लोक की अप्सरा-सी, कहाँ'? 'आज की नारी' है; यहाँ तो 'नाज़-नज़ाकत' नहीं, 'एतराज और हकीकत' है; 'सुंदरता कहाँ? यहाँ तो 'बदरंग हो रहा फूलों का रंग है; 'सांस्कृतिक प्रदूषण' है और है 'रिश्वत का रोग।'

मैं इस पुस्तक की एक-एक रचना को बहुत गौर से पढ़ गया। 'रचना' शब्द का प्रयोग मैं जान-बूझकर इस कारण कर रहा हूँ कि हर रचना कविता हो कोई जरूरी नहीं है। कोई रचना कविता हो सकती है और नहीं भी हो सकती है। 'रचना' तो 'कविता' की कसौटी पर खरा उतरने के लिए रसात्मक होना आवश्यक है-'रसात्मकम् वाक्यम् काव्यम्।' तो, सिद्धेश्वर जी की इस पुस्तक की रचनाओं में काव्य के नौ रसों में कौन-सा 'रस' है- इसके लिये पाठकों को इस पुस्तक की रचनाओं को हृदयंगम करने की आवश्यकता है।

इसके पूर्व कि मैं अपनी ओर से कुछ कहूँ, कविता और आज के संदर्भ में

कविता के प्रति स्वयं कवि के दृष्टिकोण को समझ लेना जरूरी है। पुस्तक के आरंभ में कवि ने 'कविता के संदर्भ में' शीर्षक के अंतर्गत अपने जो विचार व्यक्त किये हैं, वे, इस प्रकार हैं -

(1) ''परंपरागत आस्थाएँ, विश्वास और मूल्य टूट रहे हैं।

(2) इसका प्रभाव रचनाकार के चिंतन और लेखन पर भी गंभीर रूप से पड़ना स्वाभाविक है।''

'यह सच है' की रचनाएँ 'इसी प्रभाव' की 'यथातथ्य अभिव्यक्ति' हैं, क्योंकि स्वयं कवि के शब्दों में - ''कवि अपने चारों ओर के वातावरण में जो कुछ देखता या अनुभव करता है, उसकी यथातथ्य अभिव्यक्ति के लिए प्रयास करता है।''

(3) कविवर सिद्धेश्वर के अनुसार - 'नई कविता, ही आज हिंदी साहित्य में अधिकांश लिखी जा रही है' और यह बात बिल्कुल सही है, परंतु कविता की सर्वमान्य सनातन कसौटी पर इस 'नई कविता' की उत्कृष्टता संदिग्ध है।

(4) सिद्धेश्वर जी के विचारानुसार - 'कविता की सार्थकता इसी में है जब उसमें स्पष्टता और प्रांजलता पर विशेष ध्यान दिया जाय, कहीं कोई उलझाव नहीं, कहीं कोई कृत्रिमता नहीं, सीधे समझ में आ जाने वाली कविता'- परंतु तब, 'प्रसाद और पंत' की तुलना में बच्चन क्या अधिक महत्त्वपूर्ण कवि हैं? मुझे तो ऐसा नहीं लगता कि कविता की सार्थकता ''गंगा के किनारे मेरा घर है'' में अधिक है और 'गंगा में मेरा घर है' में कविता की सार्थकता अपेक्षाकृत कम है। कविता की सार्थकता/उत्कृष्टता की कसौटी तो 'अभिधा' नहीं, 'व्यंजना' है।

(5) सिद्धेश्वर जी के विचार से ''आज जरूरत इस बात की है कि कविता अपनी बुनियादी बिरासत से जुड़कर अपने सामाजिक और सामयिक सरोकारों की बृहत्तर भूमिका चुने।''

- यहाँ ''बुनियादी बिरासत'' और ''सामाजिक और सामयिक सरोकार''

शब्दों की व्याख्या आवश्यक है। 'बुनियादी बिरासतों' में रोटी, कपड़ा और मकान है, तो क्या कविता इन्हीं में बंदिनी बनकर रहे? रोटी, कपड़ा, मकान के अलावा अन्य बिरासतों पर भी ध्यान दें? क्योंकि कवि भी 'मनुष्य' है, उसके भी 'मानव-हृदय' हैं, और प्यार-मुहब्बत भी उसकी बिरासतें हैं - और सृष्टि के आदि-काल से हैं महाकवि जयशंकर 'प्रसाद' के शब्दों में -

''वह मूल शक्ति उस खड़ी हुई
अपने आलस का त्याग किये ....
.... जलनिधि का अंचल व्यंजन बना
हरिणी का, दो दो साथ हुए।''
- (कामायनी)

दूसरी बात कि, कविता के लिये ''सामाजिक और सामयिक सरोकार'' कोई जरूरी नहीं है। दुनिया की बहुत-सी कविताएँ सामाजिक और सामयिक सरोकार नहीं रखकर भी, अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। मेरा तो स्पष्ट अभिमत है कि 'सामाजिक और सामयिक सरोकार' रखने वाली कविताएँ समय की शिला पर अमिट छाप नहीं छोड़ सकीं - शीघ्र ही आउट ऑफ डेट हो गयीं, जैसे-जनार्दन प्रसाद झा की कविता 'विश्व-वेदना, दिनकर की पुस्तक 'हुंकार' आदि। 'सामयिक सरोकार' रखने वालों का मूल्य या महत्त्व भी 'सामयिक' ही रह जाता है।

पुनः सिद्धेश्वर जी लिखते हैं कि उनके ख्याल से 'वर्तमान परिवेश में कविताएँ वैयक्तिक जीवन के अतिरिक्त सामाजिक सरोकारों पर केंद्रित होनी चाहिए।'

अतः इस पुस्तक में सिद्धेश्वर जी की रचनाओं को उनके ही विचारों के आलोक में देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये रचनाएँ सिद्धेश्वर जी की मनोभूमि से निःसृत नहीं हैं, वरन् सामाजिक और सामयिक भाव-भूमि से उद्‌भूत हैं। स्वाभाविक है, इनमें आज के समय और समाज की धड़कनें हैं -स्पंदन हैं - क्रंदन हैं। कबीर और रहीम की विचार-धारा रचनाओं के सदृश ही इन कविताओं का वैचारिक मूल्य है।

अब, आइए कुछ उदाहरण देखें - कुछ नमूनें देखें। 'दहेज का दर्द' में बेटी की शादी के लिए दहेज की समस्या है, 'यह सच है' में आतंकवाद की आग में शौहर को खोने वाली औरत का दर्द है, 'वी0 आई0 पी0' में प्रसव-पीड़िता, 'फकीर का सवाल' में गरीबी-भुखमरी और 'शून्य होती जबावदेही' में बलात्कार की विषम वेदना है। इस पूरे संकलन की कविताओं में किसी-न-किसी प्रकार की पीड़ा है- सामाजिक, राजनैतिक, प्रशासनिक, सामयिक-यहाँ-से-वहाँ तक यदि किसी एक तत्त्व की प्रधानता है तो, वह है आज का दर्द। ''यह सच है'' की बहुत-सी रचनाएँ क्या हैं? आज के सच की दो-टूक अभिव्यक्ति हैं और निःसंदेह, स्वातंत्र्योत्तर (सन् 1947 के बाद के) भारत की बदहालियों के 'सच' को उजागर करने में सिद्धेश्वर जी कृत-कार्य हुए हैं। कवि अपने लक्ष्य-संधान में संपूर्णतया सावधान और सफल हैं - इसमें संदेह नहीं।

मगर, 'यह सच है' का सामना तो बिरले ही लोग करते हैं। वैसे, भाँजने के लिये तो 'Dare to be True' हर आदमी कहता है, परंतु सच का भंडाफोड़ होते देखकर ही लोग मुँह चुरा लेते हैं, भाग खड़े होते हैं या 'दुश्मनों की साजिश' बताकर अपना सीना फुला लेते हैं! यह गलत बात है और सच का जो सामना करता है, वही सराहनीय है। अतः आज की सच्चाइयों को उजागर करने वाले कविवर सिद्धेश्वर की इस पुस्तक का व्यापक स्वागत किया जाना चाहिए।

यदि किसी युग की कविता उस युग के इतिहास-लेखन की आधार-सामग्री (Source material) बन सकती है तो निश्चय ही इन कविताओं का ऐतिहासिक मूल्य होगा- ऐसा मेरा विश्वास है। 'यह सच है' की रचना-भूमि पर ही आज के इतिहास का भवन बन रहा है।

❖

डॉ. दीनानाथ 'शरण'
पूर्व युनिवर्सिटी प्रोफेसर एवं
हिंदी विभागाध्यक्ष

आवास :
दरियापुर गोला,
बाँकीपुर, पटना

अनुक्रम

i.	समर्पण	03
ii.	कविता के संदर्भ में	04
iv..	अभिमत	14
iii.	शुभाशंसा	19
v.	भूमिका	23
1.	स्वागत	29
2.	बसंत का एहंसास	30
3.	दहेज का दर्द	33
4.	मेरी होली	37
5.	फिर बसंत आया	40
6.	कविता-वाचक	42
7.	बदरंग हो रहा फूलों का रंग	43
8.	घूँघट	44
9.	हिंदीवाले ही दोषी हैं	47
10.	आमंत्रण	50
11.	यह सच है	52
12.	जीवन का सच	54
13.	तूफान तलाशता एक नया रास्ता	56
14.	कुछ नया लिखिए	58
15.	ठीकेदार धर्म के	59
16.	अँध-विश्वास	62
17.	जिंदालाश	64
18.	वी0 आई0 पी0	66
19.	राष्ट्र चेतना	67
20.	शिकायत फितरत की	69
21.	फकीर का सवाल	72
22.	आर्थिक सुधार	74

23.	खत्म होती जवाबदेही	76
24.	आरोप गलत है	78
25.	शहरी जिंदगी	80
26.	फिदा	82
27.	बढ़ती आबादी	84
28.	स्वाभाविक है	86
29.	एक सवाल	87
30.	जहरीला नाग	89
31.	विचित्र है विधाता का विधान	91
32.	नेताजी	93
33.	औरत	96
34.	सांस्कृतिक प्रदूषण	99
35.	आज के लोग	101
36.	आज की नारी	103
37.	एक नई दिशा की तलाश	105
38.	मज़ा छेड़-छाड़ का	107
39.	लोकतंत्र की रक्षा	108
40.	टोपी और पगड़ी	111
41.	जनता का जागरण	117
42.	मंहगाई के तेवर	118
43.	रिश्वत का रोग	120
44.	क्यों मिलाते हैं हाथ	155
45.	अपने को जानें	124
46.	संसदीय लोकतंत्र	126
47.	कलम को कुचलते कट्टरपंथ	130
48.	खतरों से घिरी कलाकार की आजादी	133
49.	दाग़ी-दाग़ी का खेल	135
50.	दर्द से कोई वास्ता नहीं	138
51.	पिता-पुत्र संवाद	141

◆◆◆

स्वागत

वद्ध शरद की विदाई
और लालित्यपूर्ण बसंत का
प्रकृति के आँगन में शुभागमन।

कली से फूल तक में यौवन की सुगबुगाहट,
तो भला आप ही बताएँ
क्यों न हो मेरे दिल में गुद-गुदाहट?

बसंत कर रहा पेड़, पक्षी, हवा
तथा हर पड़ाव को आंदोलित
तो क्यों न हो मेरे मन में झनझनाहट?

आमों की डाली पर
कोयल की कूक हो
पक्षियों के झूंड में
लगातार हो चहचहाहट
तो क्यों न हो मेरे मन में गुनगुनाहट?

गाँवों की पनघट पर
पनिहारिन की जमघट हो
होली के अवसर पर
मिलन परस्पर हो
तो क्यों न हो मेरे मन में स्वागत की छटपटाहट?

□□

बसंत का एहसास

आम के पेड़ों में
मंजरियों की सुगंध
बह रही बयार में
जवानी की रसगंध
बसंत के आगमन का
एहसास कराती है।

सुमधुर कंठ से
कोयल की कूक
भ्रमर के स्वर में
फूलों के रस को
चूस लेने की हूक
बसंत के आगमन का
एहसास कराती है।

नयापन धारण करने की तैयारी में
पुराने पत्तों का गिराना
सरसों के पीले-पीले फूल
हवा के साथ सरसराना
बसंत के आगमन का
एहसास कराती है।

जन जीवन के अंतस की अंगड़ाई
फूटती हुई हरी-हरी कोपलों की तरुणाई

छोहरियों के सपनों का रंगीन होना
उनके होठों और गालों पर
हठात लालिमा का आ जाना
बसंत के आगमन का
एहसास कराती है।

कचनार पत्तों की आड़ से
फूल की आँखों का खुलना
फागुन की राह तकता टेसू का
फगुनौती को आता देख
चौकस हो जाना
बसंत के आगमन का
एहसास कराती है।

सूनी अलंगों की झाड़ियों को
बड़े-बड़े टीलों पर खड़े पेड़ों को
कोई पानी नहीं देता
उसका कोई माली नहीं होता
फिर भी बसंत के जलसे में
अपनी उपस्थिति दर्ज कराकर
बसंत के आगमन का
एहसास कराती हैं।

किंतु हमारे अंदर का बसंत
हो रहा दिन-ब-दिन उदास
कहीं जा छुपा है चेहरे पर
बासंती अल्हड़ता का उल्लास

अविश्वास, आशंका, घृणा, द्वेष
तथा तनाव के वातावरण में
ऋतुओं के अर्थ खोने का
एहसास कराता है।

और हकीकत तो यह है
कि इन ऋतुओं के अर्थ
खोने के साथ-साथ
इंसानियत के लुप्त होने का
एहसास कराता है।

पर सच मानिए दोस्त
बसंत आने का
और चले जाने का
उतना गम नहीं जितना इस बात का
कि क्या-से-क्या होने का
यह एहसास कराता है।

दहेज का दर्द

दहेज का दर्द
आखिर किसे नहीं सताता है,
पर, क्या हमने कभी सोचा,
कि, इसका कौन अधिष्ठाता है।
हम सब अपने आप में
झांककर देखें,
उत्तर तुरंत मिल जाएगा।
और यदि हम यों कहें
कि दहेज न लेने-देने का
तहे दिल से हम सब लें संकल्प,
तो निश्चित ही इस समस्या का,
निदान निकल आएगा।

दहेज एक अभिशाष है,
यह वे भी हैं कहते
जिनका घर
दहेज से मालोमाल है।
दहेज समाज का एक कोढ़ है,
यह अलाप है उनका भी,
जिनका मकान,
दहेज से आलीशान है।
आप इसे मानिए या न मानिए
पर उस घर की हर ईंट
इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

यदि इसका और प्रमाण चाहिए,
तो इधर आइए
एक ही पिता के
दो चेहरों को आजमाइए।
पिता के उस चेहरे को,
जिनकी बेटी ब्याही जाने वाली है,
और फिर उसी पिता के
उस चेहरे को
जिनके घर बेटी आने वाली है।
आपको यकीन नहीं होगा
कि, बेटी का बाप
दहेज को किस तरह कोसता हुआ,
अपने आँसुओं को पोछता हुआ,
व्यथा-कथा अपनी सुनाता है,
और आपका मन,
करुणा से भर आता है।

किंतु
वही बाप
अपने बेटे की शादी में
न जाने कितनी बेटियों के बाप की
नाक रगड़वाता है,
और दिल्ली से दौलताबाद तक,
उनके जूते घिसवाता है।
यह तो हुई,
बेटे के पिताश्री की कहानी

उनकी माताश्री की कहानी सुनकर,
आपको और होगी हैरानी।

खैर,
अभी छोड़िए उसे,
कभी सुन लेगें
आप मेरी जुबानी।
मेरा तो मानना है-
कि यदि,
हर माँ दहेज के दर्द को,
समझ जाय,
तो बेटी के बाप का भार,
कुछ अवश्य कम जाय।

उनकी फरमाईश,
मत पूछिए तो अच्छा,
और यह तो आपको भी पता है,
माँगों की एक लंबी फेहरिश्त,
जैसे महीने की पहली तारीख को,
किराने की दुकानों में,
एक पुर्जा पहुँच जाता है।

आपसे हूँ मैं पूछता,
आखिर, यह सिलसिला
कबतक चलेगा?
उत्तर स्पष्ट है,
तबतक,

जबतक हम सबके चेहरे पर,
यह नकाब रहेगा।

दहेज आसमान को छूता हुआ,
महँगाई को ढकेलता हुआ,
और भ्रष्टाचार को ढिठलाता हुआ,
अबाध गति से,
अपने पथ पर बढ़ता रहेगा।

कभी-कभी तो सचमुच,
यह मुझे लगने लगता है,
कि, इससे तो अच्छा है
वही बाप,
जो दहेज पर लंबा भाषण न देकर,
अभिशाप के बदले
उसे वरदान समझता है।

नहीं-नहीं,
सही तो यह भी नहीं
आपको अपनी कविता की
झोली लेकर,
लोगों के बीच जाना होगा,
और दहेज मिटाने का,
लगातार अलख जगाना होगा।

मेरी होली

बसंत के साथ-साथ
होली आई,
और अपने साथ
कई रंगों का सौगात लाई।

किशोर और किशोरी
एक दूसरे के रंग में डूबे,
तरुण और बूढ़े,
अपनी उम्र सीमा को दाबे
सारे फासले मिटाई।

पिचकारी के रंग,
एक दूसरे के संग,
जाति, समाज तथा धर्म की
सरहदों को पार कर
पथ पर खुशियाँ बरसाई।

पर सेवानिवृत्त कर्मचारीवृंद
अपने फटेहाल वस्त्रों पर ही
रंग लगवाकर
अपनी खुशियाँ जताई।

अबीर गुलालों से
पिचकारी की फुहारों से
नायक एवं नायिका की

कई छबि भाई।
नारी चली पिया के पास
मन में रखकर बड़ा विश्वास
खुशियों की सौगात लुटाती
मन में भरकर बड़ा उल्लास
होली सचमुच बड़ी निराली
सबको कर देती मतवाली
हर साल की तरह
इस बार भी आई।

अपने बरामदे में बैठ
यही लिख ही रहा था
कि, श्रीमती जी आईं
हाथ में रंग की बाल्टी लटकाई।

मैं तो रहा इन पंक्तियों में व्यस्त
तभी उड़ेल दी उन्होंने बाल्टी समस्त
मेरी कलम मेरे हाथ में
पर मन न रहा मेरे साथ में।
लगा कि
मैं भी उनके रंग में रंग जाऊँ
प्रेम की वर्षा उनपर बरसाऊँ
पर सोंचा,
मैंने ही तो की थी
अहले सुबह उनसे ठिठाई
चुटकी भर रंग
और अंजुली भर अबीर
उनके गालों पर लगाई।

सिर्फ जाकर कहा उनसे,
श्रीमती जी! आप जीतीं,
मैं हारा,
यही मैंने कसम खाई।
लौट गईं
वह भी पकवानों की तैयारी में,
मेहमानों की अगुआई में,
व्यस्त हो गईं,
सोंचा,
क्या यही होली
उन्होंने भी मनाई
जिनके घर महँगाई की मार से
कुछ पुड़िया भर रंग
और अबीर के लिए
खाली हाथ आई।

न उनके हाथ पिचकारी
न और कोई चमत्कारी
आज शाम भर आँटा से
महँगाई की चाँटा से
आखिर कैसे होली बिताई?

तेल, घी, शक्कर पर
कपड़ा औ लत्तर पर
महँगाई की मार ने
होली की मस्ती पर
है चक्कर चलाई।

फिर बसंत आया

फिर बसंत आया,
हर साल की तरह,
एक वर्ष और गंवाया
हर मौसम की तरह।

पर इस वर्ष कालिख लगे हाथों में,
गुलदस्ता कैसा लगेगा,
जब वह गंदे हाथों से,
दूसरे भाई के हाथों पड़ेगा।

रेडियो, टेलिविजन से आवाज;
देश सामान्य स्थिति की ओर लौट रहा है,
पर उस काले दिन का भयावह दृश्य,
उसके चेहरे पर साफ नजर आ रहा है।

बसंत का आ जाना,
जैसे किसी बात का घट जाना,
पिछले साल बिटिया
मुझसे पूछने लगी थी,
पापा!
बगीचे में ढेर सारे फूल कैसे खिल गए?
मैंने उसे बताया था,
बेटी, फिर बसंत के दिन आ गए।
किंतु,
कुछ के उन्माद और हैवानियत से,

हमारे निर्दोष भाई
सदा के लिए हमसे छीन गए।
और इस सवाल का जबाव,
हम चाहकर भी न दे पाए।

बिटिया ने इस वर्ष पूछा :
पिछले साल बसंत के पूर्व
तो ऐसा कुछ नहीं हुआ था!
मैंने सिहरते स्वर में कहा :
उस वर्ष लोगों के सर पर
हैवानियत का भूत सवार नहीं था।

उसने कहा :
यह कैसा संयोग है?
मैंने समझाया
यह बासंती रोग है।

छह दिसंबर बिरानवे के पहले,
केसरिया वस्त्रवाले
देशवासियों को ललकार रहे थे-
''जिस हिंदू का खून न उबले
खून नहीं वह पानी है''
जी हाँ,
उन्हीं की यह मेहरबानी है
आँसूओं का समुंदर पीकर,
फूलों का गुलदस्ता लेकर,
फिर बसंत आया।

❑❑

कविता-वाचक

मेरा नाम तो
निर्बंधित था
आयोजक, प्रायोजक
और संपादक में,
पर गलती से
पढ़ा गया
मेरा नाम
कविता-वाचक में।

कल तक भाव जो
बाँटा करता था
साहित्यकार, रचनाकार
और कवि-मित्रों में
आज खूद ही
मैं कैद हुआ
कवियों की पंक्तियों में।
पर इतने पर भी
संतोष न हुआ
भाई 'तोमर' को
तब मेरा भी नाम लिखा
संवेदनशील और मर्मज्ञ
कविता-वाचक में।

❐❐

बदरंग हो रहा फूलों का रंग

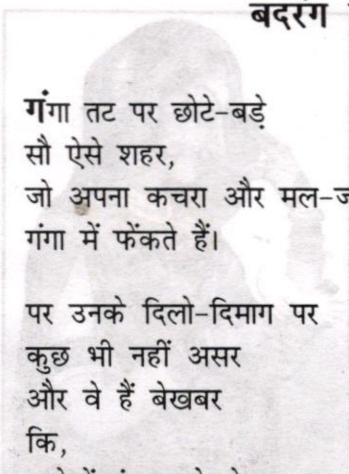

गंगा तट पर छोटे-बड़े
सौ ऐसे शहर,
जो अपना कचरा और मल-जल,
गंगा में फेंकते हैं।

पर उनके दिलो-दिमाग पर
कुछ भी नहीं असर
और वे हैं बेखबर
कि,
करोड़ों इंसान के सेहत पर
प्रदूषण झोंकते हैं।

आखिर वो जाए तो जाए कहाँ
कल-कारखाने और उनकी
चिमनियों से भी धुँआ और धूलकण
निरंतर निकलते हैं।
जब फूल भी हैं आ रहे,
उनके गिरफ्त में
विषाणुओं के फैलाव भी हैं बढ़ रहे।
फिर उपरवाला ही बताए
मनुष्य कैसे बच सकते हैं।

किंतु हर इंसान को
इसे गंभीरता से लेना होगा
आने वाले खतरे से,
सबको सावधान होना होगा
तभी निदान पा सकते हैं।

घूँघट

आजकल लड़कियाँ
घूँघट से नफरत करने लगी हैं,
और बिल्कुल
बराफट की तरह रहने लगी हैं
किंतु
अब ये लोगों को
लुभावने लगने लगी हैं।
क्योंकि, अब उन्हें
उसकी विशेषताएँ पता चल गयीं हैं।
तो फिर आइए,
आप भी
उनपर गौर फरमाइए।

घूँघट में
काली कलूटी
अधेड़ महिला भी
सुंदर समझी जाती है।
घूँघटवाली चाहे, लाख लड़ाकू,
पहलवान और पटाखा हो,
पर वह शील और लज्जा की
साक्षात मूर्ति समझी जाती है।

और तो और
उनकी अनेक गलतियों पर भी

लोगों को रहम व
सौ कसूरें माफ कर दी जाती हैं।

खुला पंसद को
खिड़की से झांकने की इजाजत नहीं
पर घूँघटवाली का
खिड़की तो क्या
स्टेज पर भी
नृत्य की आज्ञा मिल जाती है।

खुलेपन में
आपका देखना
खाने की मुद्रा
और गुस्से के मारे
मन में बढ़ते
बिंब-प्रतिबिंबों को
हर कोई भांप लेता है,
पर घूँघट में
चुपके से मलाई
और मावे के लड्डू का भी
किसी को आभास तक नहीं होता है।

घूँघट सास, ननद और पति का
प्यार पाने का अनुपम गुर है

पर बिना घूँघट की
आप उनकी आँखों से दूर हैं।
घूँघट में न मेकअप की,
और न किसी चौंचले की जरूरत है,
बल्कि वह तो एक ऐसा कवच
जिसके भीतर सारे अवगुण सुरक्षित हैं।

घूँघट के द्वारा
सच्चे मन से
पति भी वशवंती हो जाते हैं,
जैसे कपड़े की पालवाली नाव को
हवा के झोंके खीच ले जाते हैं।

घूँघट के कारण
घर-भर से
आकल्पित मान-मनुहार
और आदर भाव मिल जाता है
उसकी थोड़ी-सी पहल व चुहल पर
पति भी उसका दीवाना बन जाता है।

❑❑

हिंदीवाले ही दोषी हैं

हिंदी नदी की तरह तप की
आहुति के धूम को घिसे चंदन की
झेले हैं इसने
सबसे अधिक झमेले,
किंतु इसी ने
एक छोर से दूसरे तक
है संदेश बिखेरे।

रमता योगी परिव्राजक
भिक्षुक और कलाकारों ने
है इसकी प्यास जगायी,
संघर्षों से प्राप्त दीप्ति यह
पूरे जग में फैलायी।

हिंदी में सबका रूझान है
परिष्कार का, अनगढ़पन का
ठेठ गंवई के देसीपन का,
पर प्रतिष्ठा है सामान्य-जन की
सूधे मन व वचन का भी।

संभाल रही गरिमा संस्कृति की
और पुरानी परंपरा भी,
है संभाली बड़े यत्न से
राग-विराग, अध्यात्म दृष्टि की।

सत्ता से निरपेक्ष रहने का
इसका सदा स्वभाव रहा,
तभी तो नौकरीवाला भी
भीतर से तिलमिला रहा।

बिना विनम्रता खोए ही
स्वाभिमानी रहना
हिंदी भाषा का स्वभाव रहा
जितना ही तुम उन्मूल करो
स्वत्त्व हमारा जाग रहा।

प्रलय मचेगा, और जमेगा
विलायती का मकान ढहेगा
नहीं बनना अँग्रेज हमें अब
सत्ता की भाषा नहीं बनेगा।

बनना है भाषा सौहार्द की
संयोजन और प्यार की
तैयार करो अब समर्थ व्यक्ति को
हिंदी की न माँग करो
पर किसी की प्रभुसत्ता भी
कभी नहीं स्वीकार करो।
अहिंदी-भाषी क्षेत्र में है जो
उनका भी सम्मान करो।

हम सीखेंगे तमिल, तेलुगु
और बंगला भाषा भी,
पर सेतु का काम करेगी
हमारी हिंदी भाषा ही।

नहीं सजावट गुलदस्ते की
जूड़े की नहीं शोभा यह,
संवाहक है, जनभाषा है
मंडप की वंदनवार भी।
जंजीरों की नहीं जरूरत
यह तो मुक्त धारा है,
रोके नहीं रुकेगी अब यह
धरोहर इसका सहारा है।

मलिक मुहम्मद जायसी
औ भक्तिरस रसखान की
''मानुष हो तो वही रसखान
बसो ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन''
उत्तम पद्यों की थाती है यह
और राष्ट्रीयता की पहचान भी।

सिख गुरुओं ने हिंदी में ही
अपनी वाणी का प्रकाश किया,
जार्ज ग्रियर्सन और कामिल बुल्के
सबने इसका सम्मान किया।

हिंदी को सर्वाधिक प्रतिष्ठित
अहिंदी भाषियों ने की
पर यह सत्य है कि,
हिंदी की दूर्दशा
हम हिंदी भाषियों ने की।

❑❑

आमंत्रण

मान्यवर,
चुनावी हलचलों के पश्चात्
अब चलें हम सब
बन बिल्कुल अनजान
उस साहित्य-संसार की डगर सुनसान
और करें काव्य-सुधा-रस का पान

जहाँ हमारे चर्चित व सुपरिचित
कवि बंधुओं ने
स्वीकारनें की कृपा की हमारी विनती
और अपने गीतों व ग़ज़लों से
हमें सराबोर करने की
दी है अपनी स्वीकृति।

तो कुछ देर के लिए ही सही
छोड़िए आप अपना सब कारोबार
क्योंकि,
सादर आमंत्रित हैं
आप सपरिवार।

राष्ट्रीय विचार मंच का आँगन
पुरंदरपुर स्थित 'बसेरा' निवास

मीठापुर पोस्ट ऑफिस के पास
जहाँ हम सब करेंगे
'मुरली सम्मान' से सम्मानित
गीत-चेतना के सशक्त गीतकार
गोपीवल्लभ सहाय का सम्मान।
जो हैं हम सब के अरमान
और जिन पर करते हैं
हम सब अभिमान।

दिन होगा अगला सोमवार
तिथि होगी वही दस अप्रैल
समय होगा
छः बजे संध्या-काल
और निवेदक भी
वही सिद्धेश्वर
कर जोड़े बार-बार
कर रहा द्वार पर खड़ा
आप सबों का इंतजार।

□□

यह सच है

यह सच है
आतंकवाद की आग में
अपने शौहर को खोकर
बेबा बनी एक मजबूर माँ
अपने पेट की खातिर
दर-दर ठोकरें हैं खा रही,
और जालिमों की वजह से
खानाबदोश बन
'अपनी बेटियों' की
अस्मत है लुटा रही।

यह सच है
सरकारी महकमों में
उसका कोई मददगार नहीं,
सब खुदगर्ज हैं बने बैठे
उनकी खिदमत किए बिना
कोई खैर नहीं।

यह सच है
फटेहाल तंबुओं में
बरसात और सर्दी की रात
फटी जिंदगी वह सोती है,
प्लेटफॉर्म पर पुलिस को
खुश नहीं करने के जुर्म में
उसकी बेगुनाह लड़की

जेबकतरी करार दी जाती है।
और यह भी सच है
राजनैतिक आकाओं के
भ्रष्टाचार और अनैतिक व्यवहार को
अब और न सहने की
जनता ने ठान ली है,
और मूक विरोध की जगह
खुले आंदोलन के लिए
सड़क पे आन पड़ी है।

इसलिए उसके मनमानी करने के दिन
अब सिर्फ गिनती के होंगे
क्योंकि,
सत्ता पर बैठे हुकमरानों
और उसकी व्यवस्था से
टक्कर लेने में
वे अकेले नहीं
आप भी उनके साथ होंगे।

संभलों, ये सत्ताधारियों
कबतक उनकी आँखों में धूल
तुम झोंकते रहोगे?
और कबतक रास्ते की धूल
वे फाँकते रहेंगे?
कबतक चलेगा
तुम्हारा ये ताना बाना
इसलिए बदलो, तुम अपने को बदलो
नहीं तो बदल देगा तुम्हें ये जमाना।

□□

जीवन का सच

जीवन का सच है
भक्तों की अराधना में
साधकों की साधना में
नेताओं के कोरे आश्वासन में
और भिखारियों के भिक्षाटन में।

जीवन का सच है
मान-सम्मान और भाव में,
जो साहित्कारों को जिलाए रखता है
गेहूँ के हरे-भरे दानों में,
जो किसानों को हर्षाए रखता है
और हँसते-हँसते सर कटाने में,
जो जवानों को गरमाए रखता है।

जीवन का सच है
जीवन की सांझ में
जब सारे सहारे छूट जाते हैं
तब व्यक्ति के सामने
जीवन-मरण का प्रश्न
आ खड़ा होता है

और वह व्यावहारिक कदम
उठाने को बाध्य हो
विकल्प की तलाश करता है।

जीवन का सच है
वक्त ही आदमी व समाज को
सही दिशा देता है
इसलिए अपने रास्ते पे चलने से
अँधेरा छँटता ही है
प्रकाश फूटता ही है
और तलाश करने वाले को
रास्ता मिलता ही है।

□□

तूफान तलाशता एक नया रास्ता

किसी के दुःख को बाँटना
किसी के ज़ख्म पे मरहम रखना
यही मानवता है
और यही सच्चाई है
क्या आपने यही बात
औरों को बताई?

जनता को तो बस
पेट में रोटी,
तन पे वस्त्र,
और सर छुपाने के लिए
एक घर चाहिए
इसके लिए वह इंतजार करती है,
पर जब जनतंत्र के नाम
सिर्फ उसे लूटा जाये
तो खूनी क्रांति की संभावना
अवश्य बढ़ जाती है।

तूफान जब बढ़ चलता है
तो वह किसी से चलने की
इजाज़त नहीं माँगता
वह तलाशता है एक नया रास्ता

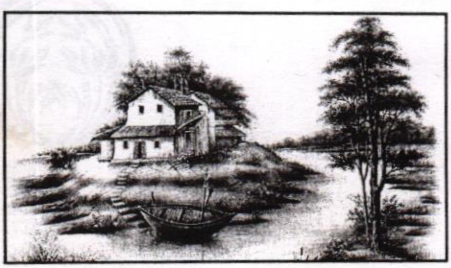

जिसपर चलकर
सबको रोटी मिलेगी
सबको रोजी मिलेगी
और मिलेगा सबको
न्याय और जीने का अधिकार
सच मानिए, मेरे दोस्त
इसी के लिए
करना होगा
तहेदिल से आपको प्रहार।

□□

कुछ नया लिखिए

जितनी कसमें यहाँ खाईं गईं
सब-के-सब वे भुलाई गईं
जितने वादे यहाँ बाँटे गए
सब-के-सब जहर पाए गए
पर सच मानिए मेरे दोस्त
मात्र एक कुर्सी के लिए
आँखों पर ये पट्टी बाँधे गए।

अब आप ही बताइए भला
हम क्यों न करें संघर्ष
और आंदोलन सब मिलके,
आखिर तभी न होंगे साकार
बाबा अम्बेडकर के सपने।

तो आइए, कवि-मित्रों
उन दलितों एवं पीड़ितों पर
सामाजिक समरसता के लिए
राष्ट्र की एकता के लिए
कुछ नया लिखिए।

□□

ठीकेदार धर्म के

क्यों जुड़ी है
संवेदनशीलता इतनी
धर्म में सारे
सुनाई मौत की सजा
एक चौदह-वर्षीय युवक को
शहर की एक अदालत ने
दोष उसका सिर्फ इतना
कि
लिख दिए कुछ शब्द उसने
धर्म की दीवारों पर।

पूछता हूँ मैं आपसे
लिखने से कुछ शब्द
क्या धर्म टूट जाएगा?
क्या मारने से पत्थर
पिरामिड टूट जाएँगे?
क्या हवा के झोंके से
कुतुबमीनार गिर जाएगा?
क्या लहरें यमुना की
ताजमहल को बहा ले जाएँगी?

नहीं, कतई नहीं

तो फिर
क्यों हो जाते बेचैन
ठीकेदार धर्म के
जरा-सा कुछ कर देने पर?
आखिर डरते क्यों हैं
धर्म को चलाने वाले
धर्म के बनाने वाले के बंदों से
इसलिए तो नहीं
कि
माफिया का धंधा है
धर्म का धंधा
जिसमें सब काला ही काला
है करनी पड़ती काफी मशक्कत
धर्म के धंधे में
लोगों को पटाने के लिए
कहीं तप, त्याग
तो कहीं
तलवार की धार
हैं चल रहीं
कई दुकानें धर्म की
कमा रहे बेचने वाले
अपार धन।

कोरे सपने बेचकर
दिखाता हर धर्म

स्वर्ग का सब्जबाग
पर मौत के बाद
कहता हर धर्म
उपरवाले की नजर में
सब हैं बराबर
पर ऊँच-नीच
और छुआछुत
सब हैं बरकरार।
अलापता हर धर्म
है पैसा माया
पर बेशर्मी से
ऐंठता धन
धर्म स्थलों में बैठकर बेसुमार।

हैं चल रहे धर्म
बड़े मजे से
गरीबों को दिलाकर
यह आशा कि
अच्छा होगा उसका
आज नहीं तो कल।

❒❒

अँध-विश्वास

धर्म-कर्म की
झूठी बातों में
भोले-भाले भत्तू को
खुब बेवकूफ तो
बनाया है जा सकता
पर राकेश में जागे,
विश्वास के आगे
धर्म-ठीकेदार
पल भर भी
टीक नहीं पाते।

ये कर्मकांडी
सदियों से
कड़वी घुट्टी
अँध-विश्वास की
पिलाते आए
और मीठा जहर
पिलाकर ठगते आए।

इसलिए सदियों से
पाखंड के जाल में
फँसाए रखने वाले

इन ढोंगियों से
सावधान रहिए
और इनपर
कड़ी नजर
रखने के लिए
अपनी आँख
खुली रखिए।

❑❑

जिंदालाश

जीते हैं कुछ लोग
जिंदा लाश की तरह
हर पहर,
मरते हैं, तिलतिल
पीकर धीमा जहर।

देखकर ऐसे लोगों को
होता है दु:ख अपार
क्योंकि फैलाते हैं
बीमारी छूत
जो करती है भावी पीढ़ी को
नपुंसक साकार।

आता है देखकर गुस्सा
ऐसे लोगों को
इसलिए कि
करते हैं वे नष्ट
पुरुषार्थ को।

हालांकि
यह दुख और गुस्सा
भी बेकार हो जाता है
जब हालात में
बदलाव न आता है।

दु:ख सही है तभी
जब छूत की बीमारी को
समूल नष्ट करने का
संकल्प मन में जागे,
गुस्सा सही है तभी
जब वह जड़ता
व कायरता को
बिल्कुल नष्ट कर सके।

आखिर तभी तो
कहा है गलत
महापुरुषों ने इन्हें
क्योंकि
बास होता है 'शैतान'
इनकी जड़ों में
जो उन्हें भटकाता है
और असलियत से
दूर ले जाता है।

तब रफ्तार
जिंदगी की थम जाती है
और आखिर में वह
रुक जाती है।

□□

वी0 आई0 पी0

छटपटा रही
प्रसव पीड़ा से
स्त्री एक
है जाना
अस्पताल उसे
पारकर सड़क
देता नहीं
उसे पार करने
सड़क का सिपाही
क्योंकि
है आने वाला कोई वी0 आई0 पी0।
हो चुका है
यातायात अवरूद्ध
देती है जन्म
सड़क पर वह स्त्री
एक शिशु को
सत्ता के शीर्ष तक
जनता के बीच से
पहुँचेन वाले जनप्रतिनिधि
आ जाते रातों-रात
पंक्ति में अतिविशिष्ट की
और यही है
गणतंत्र के सेहत की
जीती जागती कहानी।

राष्ट्र चेतना

है देती नहीं दिखाई
अब वह राष्ट्रचेतना
आजादी के पूर्व की,
किंतु
है होती वह
प्राणशक्ति की तरह
जो सींचती
देश की जड़ों को भी।

पर लुप्त होती जा रही
हमारे हृदय से
आजादी के पूर्व
जो तड़प थी
कुछ करने की
देश के लिए
आज वह कहाँ गयी?

ऐसा लगता अब
नहीं बच रहा बाकी
है कुछ करने को
यद्यपि
आजादी हासिल करने से अधिक

है कठिन रक्षा करना
इस देश की।

ऐसा लगता
भूल चुके हम
दायित्व अपना
राष्ट्र निर्माण के
है यही कारण
छीजने का लगातार
हमारा राष्ट्रीय स्वाभिमान।
पर है आज जरूरत
हमारे भीतर
राष्ट्र चेतना
उभरने की।

❐❐

शिकायत फितरत की

हवा ने कहा–
बचने के लिए
प्रदूषण से हमने
धुएँ को दूर भगाया
किसी का क्या बिगाड़ा?

पानी ने कहा–
हमारा क्या गुनाह
जो हमने पानी दिया
सुखी नदी को।

है जायज शिकायत
बादल की–
उड़ेलकर पानी
सोंधी गंध दी हमनें
सुखी धरा को।

मिट्टी भी कब
चुप रहने वाली थी
सुनाई उसने
अपनी दास्तान–
आत्मसात कर पानी

लवण दिया हमने
पेड़-पौधों को
भोजन के लिए
जिससे वे बढ़े
और फूल-फल दिए।
आवाज आई तपती धूप की-
मैंने उष्मा की
हँसी जगायी
पेड़-पौधों में क्लोरोफिल देकर
हरियाली लाई।

पेड़-पौधों ने
पत्ते हिलाकर
किया इशारा
शिकायत के स्वर में-
हरियाली बिखेर कर
प्रकृति में हमने
भूवन को सजाया
आक्सीजन भेजकर
मानव को बचाया।

फिर सबों ने मिलकर कहा-
मानुष भाई!
दिन-रात प्रदूषण फैलाकर
आखिर तुमने क्या पाया?

बल्कि सच तो यह है
कि
अपने आप मरने का
तूने पैगाम लाया।

अभी भी वक्त है
सबों ने समझाया-
हम सब की तरह
तुम भी प्रकृति को संवारने में
योगदान करो और
समस्त प्राणी-जगत को
विनाश के गर्त में
जाने से बचाओ।

❑❑

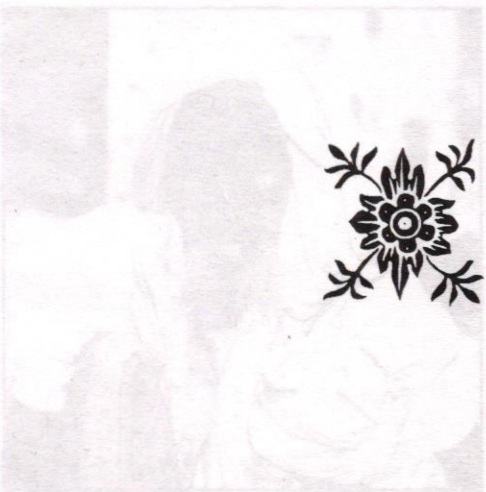

फकीर का सवाल

लपेटे कमर से
टाट का एक टुकड़ा
था वह काफी फकीर
चाहता था वह ढंकना
अँगो को अपना
पर सब बेकार।

किसी ने देखा
उसे एक मज़ार
जहाँ चढ़ाते लोग चादर
बाँटते हैं सीरियाँ
और लेते हैं आशीर्वाद।

लेकिन
नहीं जाती आँख
किसी की उस फकीर पर
और टिक नहीं पाते लोग
इस सवाल पर।

धर्म तसल्ली देता है
इबादत शांति देती है।
पूजा प्रसाद देती है
वह न तो जंग देता है
और न जहर।
पर इस सवाल का जवाब
कोई नहीं दे पाता
कि उस फकीर का
क्या होगा उस मज़ार पर।

फकीर न तो
भीख माँगता था
और न ही खाना
हाँ, चिलचिलाती धूप में
कुएँ का जल भर कर
पूरे बाजार में एक ही
आवाज लगाता था
'जल, बाबूजी ठंढा जल।'

तमाम शहर की
प्यास बुझाने वाला
वह फकीर
खत्म होते ही
पानी बाल्टी का
फिर ले आता बाल्टी भर
और लोगों के जलते
दिलों को ठंढा कर देता।

आज वह फकीर
अगर शहर के चौराहे पर
खड़ा होकर सवाल पूछे
तो क्या जवाब देंगे
कि
इस शहर में दंगा
हुआ किस तरह
है किसका यह हाथ
इसे काट क्यों न देते?
जो सारे शहर की शमां
बुझाए देता है।

आर्थिक सुधार

आर्थिक सुधारों व
उदारवादी नीतियों का नारा
गूँजता रहा सारे शहर में
गाँव-डगर में।

पर सच्चाई तो यह है
कि जनता तक
सरकार का सिर्फ
संदेश ही पहुँचा
रही चीजें नदारद
रहा सवाल मात्र
संवादहीनता का नहीं
वरन् वास्तविक सुधारों
के अभाव का
ढोल पीटती है सरकार
अपने सुधारों का।

पर छूती गईं आसमान
कीमतें आज
कम होते गए
रोजगार के अवसर
शिक्षा व स्वास्थ्य का स्तर।

लगातार गिरता रहा
और सरकारी योजनाओं की
असफलता की कहानी कहता गया

जिसका खामियाजा
भुगतना पड़ा सरकार को
गम चुनाव में
होता नहीं
ऊँची-ऊँची बातों का
कोई मतलब
उन बातों के अनुरूप जबतक
काम न किया जाय
सच यह है कि
पर्दे में रखा सब कुछ
रातों-रात बदल दी गयीं
और बदल दी गयीं
दशकों से चली आ रही
नीति स्वावलंबन की
और भनक तक न लगने
दी गयी संसद को।

पर दोस्तों
हो हमारी धारणा
देश हित में
हो समन्वय
मशीन और हाथों के बीच
हो उपयोग समुचित
जल संसाधन की
हो पायेगा तभी
जनता के लिए
आर्थिक सुधार।

❑❑

खत्म होती जवाबदेही

पिछले दिनों अखबार में
एक सनसनीखेज समाचार आया
युवती बलात्कार का शिकार हो गयी
माँ की आँखों के सामने ही
बेटी की अस्मत
लूट ली गयी।

एक गरीब असहाय
और विधवा माँ
देखती रह गयी
जान देकर भी वह
बेबस गरीब माँ
उसे नहीं रोक सकी
और वह जुल्मी
जमाने के सामने
शहीद हो गयी।

मेला घुमाने के बहाने
एक मनचले युवक के साथ
माँ-बेटी राजगीर चली आयी
लेता गया वह युवक
उन्हें वीरान-स्थल

जहाँ माँ बाँध दी गयी
हल्ला करने पर माँ को
उसकी हत्या कर
झाड़ी में वह फेंक दी गयी।
बाद में युवक और युवती
दोनों को गिरफ्तार कर
डॉक्टरी जाँच करायी गयी।

बलात्कार की पुष्टि के साथ
सबों की जवाबदेही व
दर्दनाक कहानी खत्म हो गयी।

□□

आरोप गलत है

गलत है यह आरोप
मनुष्य काटता है, वृक्ष
और करता व्यापार पशु को मारकर
करता है मनुष्य
उसका पालन-पोषण
और उसे पालतू बनाकर।

फर्क सिर्फ इतना है कि
करता है पालन-पोषण
अधिक माँस के लिए
करता है इलायज
वह पशु-पक्षियों का
अपने स्वास्थ्य के लिए।

बनाता है उसे पालतू
परिवार के लिए दूध व
घर की रक्षा के लिए
खोलता है हर शहर
तरह तरह के चिड़ियाघर
अपने मनोरंजन के लिए।

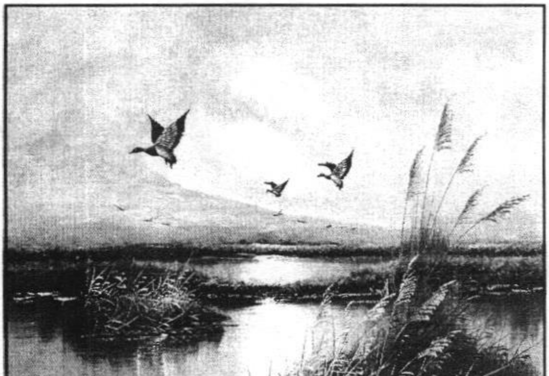

औद्योगिक क्रांति
जिसके चलते काट दिये
हमने जंगल के जंगल
तो क्या बुरा किया?
फिर कागजों पर सही
वर्षों-वर्षों से ही
वन्यारोपण तो हमने किया
कागजों से बाहर जो वृक्ष
बड़े होने में 30 वर्ष लगाते
तो हम क्या करें?

□□

शहरी जिंदगी

यह बात ठीक है
शहर की हवा व
पानी दोनों में
घुलता जा रहा है
आज भी शहर
पर यह भी सच है
आबादी का ग्राफ
शहरों का दिन-ब-दिन
बढ़ता जा रहा है
उपर ही उपर।

किसे नहीं पता
बद से बदत्तर होती
शहरी जिंदगी के बावजूद
जो यहाँ आ रहा है
रह जाता यहीं का होकर
इस अंध व अंतहीन
शहरी विकास में
जो नारकीय जिंदगी जीने के लिए
विवश हो रहे हैं
लोग यहाँ के अधिकतर।

एक अजीब बात है
गांवों के मुकाबले
ढाई गुना ज्यादा
तेजी से बढ़ रहे हैं
तीसरी दुनिया के शहर
पर विडंबना यह है
सारी सुख-सुविधाओं
के निर्माता-सर्वहारा को
खुद नहीं हो पा रहे हैं
वे सुविधाएँ मयस्सर।

सबसे अजीबों गरीब
स्थिति है निम्न व मध्यवर्ग की
गुजारी जिंदगी कोने में जिसने
दमघोंटू धुएँ से भर रहें हैं
आज भी घुट-घुट कर
सिर्फ जीभ के स्वाद,
तन की सुविधा के लिए
नौकरी पेशेवर और ग्रामीण
खिंचे चले आ रहे हैं
शहर की ओर लगातार।

❑❑

फिदा

एक बार हमने
पत्नी से कहा–
'चाहते हम फिदा होना'
पत्नी पहले चौकीं
फिर लजाकर बोलीं–
चलो, इतने समय बाद
आपको समझ तो आयी।

हमने कहा–
अरे नहीं, भागवान
चाहते किसी और पर
हम फिदा होना
यह सुनते ही
खुला का खुला
मुँह रह गया पत्नी का।
फिर बोलीं संभलकर
क्या कहा आपने?
कहिए तो फिर एक बार
नोच लूँगी, मुँह
उस निगोड़ी का
फिर नचाती हुई
हाथ वह बोलीं–
होना ही है फिदा किसी पर
तो होइए आप फिदा

अपने फ़र्ज पर
जिसकी खाते हैं रोटी,
उस इंसानियत पर
जो जोड़ती है
मुस्लिम से हिंदू को
ईसाई से मुसलिम को।
अपने उस ईमान पर
जो सिखाता है चलना
सच्चे रास्ते इंसान को
अपने आत्मविश्वास पर,
जो बचाता है
बुरे वक्त में भी
लड़खड़ाने से आपको।

फिदा हुसैन की तर्ज पर
जिन्होंने सराहा था
माधुरी दीक्षित की
प्रतिभा व कला को।

और उस राष्ट्र पर
जिसकी आजादी के लिए
कुर्बानी दी न जाने
कितनों ने अपने आपको।

बढ़ती आबादी

एक तरफ
ढोल पीटा जा रहा है
खाद्यान्न में
आत्मनिर्भरता का
दूसरी तरफ
भूख से जूझ रहा है
एक बड़ा हिस्सा
देश की आबादी का
कितना अच्छा
अट्हास हो रहा है
उस अनगिनत
भूखे, नंगे इंसानों का।

जाहिर है
खिल्ली उड़ा रहा हैं
ये सारे तथ्य व वक्तव्य
सरकारी सभी दावों की
यह सच है
दूरी बढ़ती जा रही है
बढ़ते विकास के ग्राफ के साथ
रोजी और पेट के बीच की।

पर यह भी सच है
विकराल बना रहा है
बढ़ती आबादी ने
इस जटिल समस्या को
इसलिए देशवासियों के लिए
यह लाजिमी हो रहा है
तत्काल रोकना
बेतहाशा बढ़ती जनसंख्या को।

स्वाभाविक है

स्वभाविक है
कुत्तों का काटना
जैसा स्वभाव उसका
ठीक उसी तरह
स्वभाविक है
विलंब से चलना
सभी रेलों का
धर्म के नाम पर लूटना
पंडे पुजारियों का
अपराधियों से सांठ-गांठ करना
पुलिसवालों का
झूठे वादे करना
प्रतिनिधियों का
प्रगतिशील होना
जनवादियों का
हिंसा का दौर होना
हिंदी फिल्मों का
और दफ्तर में गप्पे हाँकना
कर्मचारियों का
जी हाँ
पालते नेता
इसीलिए तो कुत्तों को
काट ले उसे
जो विरोधी हो उनका।

❑❑

एक सवाल

एक ओर आज
देश में बेरोजगारी
बीमारी और भूखमरी
दूसरी ओर
देश के भ्रष्टाचारी

तस्कर और सत्ताधारी
आकंठ डूबे हैं
तरह-तरह के
नित-नए घोटालों में
लूट ली है
अरबों की संपत्ति
इन मगरमच्छों ने
बोफोर्स, चीन
शेयर, हवाला में
आवास, भूमि, यूरिया,
व पशुपालन घोटाला में।

सत्ता पर बेखवर
बैठे हुकमरानों की
पौ बारह है
केंद्र व राज्य के
पुजारियों की

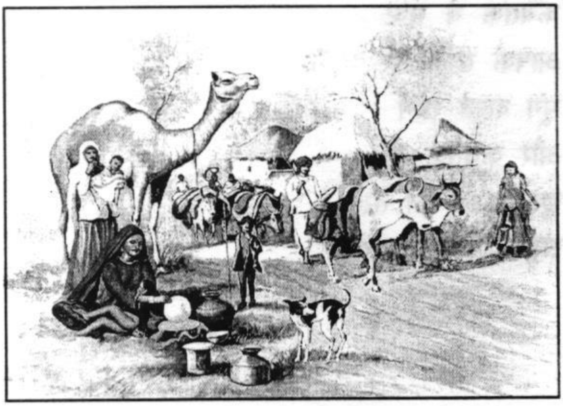

पाँचों अंगुलियाँ
डूबी है घी में
और सर कड़ाही में।
बस, ट्रेनों में
बेशुमार भीड़
खस्ताहाल सड़कों की।

बिजली नदारद
पीने का पानी नहीं
अस्पतालों में
दवाई नहीं
दफ्तरों में
सुनवाई नहीं
और विद्यालयों में
पढ़ाई नहीं।

एक सवाल खड़ा है
आज आपके सामने
कबतक ये भ्रष्ट
आपके छाती पर
मूंग दलते रहेंगे
और कबतक वे
छुट्टे सांढ़ की तरह
सड़क पे घूमते रहेंगे?

□□

जहरीला नाग

जहरीला नाग
आदमी की शक्ल में
रहकर वह डसता
कब डसता
किसे डसता
कैसे डसता
यह कोई नहीं जानता।

इनकी यह आदत
है उसकी बड़ी पुरानी
हाँ, आजादी के बाद से ही
शुरू किया उसने डसना
और आज तक वह डसता
चला है आ रहा
अब तो उसे डसने की
आदत भी है बदल डाली
आदमी को डसने के बदले
वह देश को ही है डस रहा
और कई शक्लों में वह
दिखाई है दे रहा।
कभी सांसद व मंत्री
तो कभी विधायक
कभी पूर्व सांसद
तो कभी संत्री।

इन्हें पहचानना है मुश्किल
पर जैन बंधुओं

और लखुभाई पाठक ने
कृपा की है इन्हें पहचानने की
अपनी डायरी में इनका नाम देकर
औ चार सौ बीसी में धर दबाकर।

इनकी संख्या
मत पूछिए
तो अच्छा
जैन डायरी में तो
बस केवल हैं वे एक सौ पंद्रह
पर छूटभैयों को मिलाकर
हैं सब चार सौ बीस।

सिद्धांतवादी तो वह ऐसा
कि शंकराचार्य महाराज से भी
दो कदम आगे का
दार्शनिक सिद्धांत है झाड़ता।

यह बात ठीक है
कि
दो मुँहें नाग सब
देश की राजधानी में
हैं जा बसे
पर उनके भी बाप एकमुहें
राज्य की राजधानी में
पशुचारा के नाम पर
अरबों डकार कर
सालों से सोये
जनता को हैं डसे।

□□

विचित्र है विधाता का विधान

जिनके पास
खाने-पीने का प्रचुर साधन
उन्हें भूख नहीं लगती
सुबह औ शाम
विचित्र है विधाता का विधान।

पर जिनके पास
दो जून की रोटी नहीं
वे भूख के मारे हैं परेशान
विचित्र है विधाता का विधान।

जिन्हें एयरकंडीसनर
और मुलायम बिस्तर
वे नींद की गोली के लिए परेशान
पर जिनके पास
रहने की एक छत नहीं
पथरीली जमीं पर
हाथ को तकिया बना
सो रहे हैं गहरी नींद इत्मीनान
विचित्र है विधाता का विधान।

निन्यानवे के फेरवाले
उठा नहीं सकते आनंद
अपने वैभव को वे धनवान

और न वे रुक सकते
प्राकृतिक छटा की
मोहक अनुभूति के लिए एक क्षण
विचित्र है विधाता का विधान।
पर दिन भर काम करने वाला नन्हकू
शाम को ले रहा आनंद
हरे भरे खेतों का धान
और सागर की लहरों से खेलता
मछुआर का है हरा-भरा मन
विचित्र है विधाता का विधान।

सत्ता के सिंहासन पर
बैठे नौकरशाह और हुकमरान
महसूस कर रहे हैं
अपने को अकेला
और अलग इंसान
पर मेहनतकश लोग
शाम के झूंड में बैठ
दिन-प्रतिदिन कर रहे कीर्तन
विचित्र है विधाता का विधान।

नेताजी

ये नेताजी
किसे नहीं हैं जानते
सबकी नब्ज हैं पहचानते
उनकी हाँ में हाँ
और कब 'ना'
इसे कोई नहीं जानता।
सज्जनता की साक्षात प्रतिमूर्ति।
कुशल अभिनय
और कभी नाराज नहीं होने की भृकुटि।
पर मुस्कराहट में सदैव
जहर ही दिखता।
केवल मीठा जहर
जो चखे, वह हँसे, जो न-चखे, वह फँसे,
रंगों से है उनका गहरा रिश्ता
गिरगिट सा है वह रंग बदलता।
चुनाव में तो वे
तरह-तरह के रंग बनाते
वायदों के रंग
विकास औ नारों के रंग
गरीबी व भूखमरी
मिटाने के रंग
बेरोजगारी को दूर

भगाने के रंग,
और इन रंगों में
भोली-भाली जनता
इत्मीनान से है नहलाता।
इनकी आपस की टकराहट
महज एक दिखावा
नई पीढ़ी को गुमराह करना
है इनका पेशा
ये नेता मत पूछिए
कब बन जाते
अभिनेता, जोकर और प्रवचनकर्त्ता।
कभी कवि, शायर
तो कभी कुंडली मार
संसद और विधानसभाओं में
बैठ जनता के पैसे लूटाता।
वे क्या खाते
क्या गाते
अखबारवाले भी
हजार पाँव मारने के बाद
उनके जहर के थैले का अन्वेषण
कभी नहीं कर पाता।
आज तक कोई विशेषज्ञ
यांत्रिक-तांत्रिक, ज्योतिषी
औ बड़े-बड़े स्वामी भी
जी हुजूरी करते देखा जाता।

बड़े होते हैं इनके मुँह,
आन, बान औ शान
दर्पण में भी नहीं दिखता
वे एक फूँक आश्वासन की हैं मारते
दूसरी घोषणा पत्र के
तीसरी फूँक प्रचार तंत्र
पर चौथी फूँक
वे कभी नहीं हैं जानते
फिर तरन्नुम में
पाखंड के गीत गाते
और तरह-तरह के स्वांग हैं रंचाते।

□□

औरत

एक आदमी औरत को
कौन अहमियत देता है
जब वह अकेले पड़ जाती है
तो बिना सबूत के
दोषी करार दी जाती है
और बिना कुसूर के
सूली पे चढ़ा दी जाती है।

इस देश में
जहाँ औरत की पूजा होती है
और उसे देवी माना जाता है
वही औरत
समाज की लक्ष्मण-रेखा में
सदा कैद रहती है
फिर भी आए दिन
दहेज के लिए वह
बलि चढ़ा दी जाती है।

यही नहीं
द्रौपदी का चिरहरण
होते देख भी
कोई कर्मयोगी
कृष्ण तो आता नहीं
पर अखबारों में

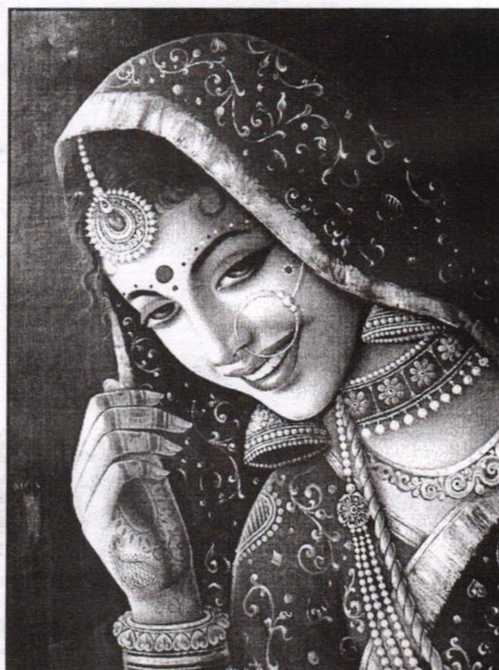

खबर अवश्य आ जाती है।
और इतने से ही
पुरुषों के कर्त्तव्य की
इतिश्री हो जाती है।
अविवाहित महिला की बात
मत पूछिए, तो अच्छा
पिता के देहावसान के बाद
सबसे बड़ी लड़की
अपने छोटे भाई-बहनों का
पालन-पोषण ही नहीं
पढ़ा-लिखाकर
शादियाँ भी रचा देती हैं
और स्वयं जीवन भर अविवाहित रह
उन भाई-बहनों के लिए
अपना सब कुछ
बलिदान कर देती है।

वही भाई अपनी
घर-गृहस्थी में मशगूल हो
अपनी अविवाहित बहन को
जिंदगी भर आहें भरने को
उसे अकेले छोड़ जाता है।

उन बेबस औरतों में
कुछ तो विक्षिप्त हो समाज में
संदेह की नजर से देखी जाती हैं
फिर उसे एक दिन

अकेला जीवन जीने को
विवश होना पड़ता है।

यदि वह महिला
कामकाजी हो तो
अपने बॉस व सहकर्मी के
दैहिक शोषण से
बचने का उसे
निरंतर प्रयास करना पड़ता है।

कभी-कभी, किसी-किसी को थककर
ब्रिटेन की पामोला बोर्डस-सी
बन जाना पड़ता है
क्योंकि,
यौन सुख भोजन की तरह
एक प्राकृतिक आवश्यकता है
उससे इसलिए सेक्स की भावना का
दमन नहीं हो पाता है।

आखिर तभी तो
कमलेश्वर की कहानी में
नायिका की विधवा माँ को
एक अदद पुरुष साया
नज़र आता है।

□□

सांस्कृतिक प्रदूषण

पहुँच गयी है
भ्रष्ट संस्कृति
हमारे बैठकखानों
और दालानों तक
दूरदर्शन के माध्यम से
उमड़ने लगा है
सड़ांध के साथ
अपसंस्कृति का सैलाब।

हालांकि यह भी सत्य है
कि
कार्यक्रमों का स्तर
तय होता है
जनता की रुचि से
अतएव
अपसंस्कृति के लिए
जनता भी
कम जिम्मेदार नहीं।

इसीलिए तो
उतार रहा है दूरदर्शन
अपने पर्दे पर

अश्लीलता और
भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों को
हनन करने वाले दृश्य
और बाढ़-सी आ गयी है
अस्वस्थ मनोरंजन की
जनरुचि की आड़ में।

❑❑

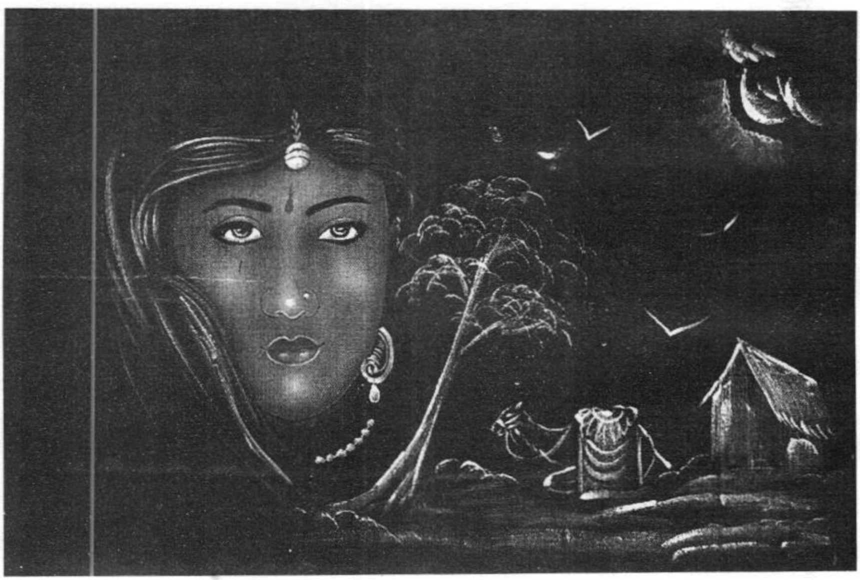

आज के लोग

कैसे हैं आज के लोग
जो हर किसी को
अच्छा कहते हैं
पर मौत के बाद।

यहाँ के लोग
जिन्हें हम इंसान कहते हैं
सहानुभूति प्रकट करने के लिए
हरदम मौके की तलाश में रहते हैं।

आप प्रसन्नचित्त न रहिए
न खुशी का इज़हार कीजिए
केवल अपनी व्यथा सुनाइए
और उन्हें खुश होने का मौका दीजिए।

यदि आप खुश होंगे
देखकर खुश आप पर वे चौकेंगे
और वे तबतक चौंकते रहेंगे
जबतक आप रो न दें।

पर क्यों चौंकते है आप?
यह सब सुनकर जनाब
क्या आप नहीं जानते?
ऐसे ही होते हैं आज के लोग।

बिना किसी गलती के भी
आपको माफी माँगनी होगी
और वैसा न करने पर
आपकी शांति भंग होगी।

माफी मांगना कोई बुरी बात नहीं
आप तनाव से बच तो जाते हैं
और इसमें कोई हर्ज भी नहीं
क्योंकि इससे शालीनता प्रकट होती है।

कितने भले होते हैं आज के लोग
सामने होते अन्याय देखकर भी
अपनी आँखे मूंद कतरा जाते हैं
और न देखने का नाटक कर जाते लोग।

❑❑

आज की नारी

आखिर कबतक नारी
जाती रहेगी मारी
कभी जलाकर, कभी सताकर
कभी भ्रूण हत्या कराकर
तो कभी जानबूझकर
रोगों को हवाला कर।

जी हाँ, आज नारी
अपनों के संग नहीं
निर्मम हत्यारों के बीच
कैद हो गयी है
जिनके दोनों हाथ
अपने ही खून से रंगे हैं।

घर की चहारदिवारी में
कैद हो जहरीली हवा की
वह सांस ले रही है
क्या यह सच नहीं
कि कहीं न कहीं
दोषी हैं हम सभी
क्योंकि नारी की

कड़वी सच्चाइयों से
रू-ब-रू होते नहीं
पर इस शहर में
आज कोई नहीं दीखता
जो इस ज़हर को
फैलने से रोकता।

□□

एक नई दिशा की तलाश

आजादी के पूर्व का काल
बना अब सिर्फ इतिहास
क्योंकि भूल जाते जो बातें
वे ही हैं सच्चे इतिहास।

1942 का भारत छोड़ो आंदोलन
देश के तरुणों का बलिदान
जनता की आहूति, लाखों कुरबान
देशवासियों के सपने, यही है इतिहास।

पूरे हुए हैं कौन से सपने?
और कितना बलिदान फले
आजाद भारत
गुलाम भारत से भी बदनाम हुए।

आर्थिक, राजनैतिक व सामाजिक
सभी क्षेत्रों में असंतुलन, स्खलन
काले नाग की तरह
जनता को हैं जकड़े।

भ्रष्टाचार, घोटाले-दर-घोटाले
अपहरण और बलात्कार
इन सबों से जनता है परेशान
कौन जिम्मेवार? यह सवाल है आपके सामने।

साहित्य हो या इतिहास
संस्कृति हो या समाज
पूरे जन-समुदाय के लिए
एक नई दिशा को है तलाश।

❐❐

मज़ा छेड़-छाड़ का

मैंने छेड़ा उन्हें
अहले सुबह
क्योंकि छेड़ने में मज़ा आता है
और जब वो
गुस्से में आ जाएँ
आँखों से खेलने में मज़ा आता है।
आँखें जब नव जाएँ
तो प्यार के सागर में
डूबने में मज़ा आता है।
गायब हो जातीं
सब दर्द व पीड़ा
जब बैठते एक साथ
तो दिल की बात
दिल से करने में मज़ा आता है।
न तो कोई गि़ला
और न कोई शिकवा
सपने में खेलने में मज़ा आता है।

❑❑

लोकतंत्र की रक्षा

देश के संसदीय इतिहास में
पहली बार यह घटना हुई
जब लोकसभा अपने गठन के बाद
एक दिन भी सही ढंग से
नहीं चलने दी गई
या फिर रेल एवं विनियोग बजट
पारित कर दिए गए
पर उनपर चर्चा तक नहीं की गई।

देश में यह भी पहली बार हुआ
जब संसद का सत्र चल रहा हो
और जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों ने
देश के समक्ष खड़ी गंभीर समस्याओं पर
कोई भी चर्चा नहीं की हो।

कई राज्यों में बाढ़ की समस्या गंभीर थी
सूखे की चपेट में भी कई राज्य थे
ईराक में तीन भारतीय नागरिक बंधक बने
ट्रांसपोर्टरों की हड़ताल से
करोड़ों का नुकसान
और जनता मुसीबतों से परेशान।
पर संसद में विराजमान जनप्रतिनिधि

सिर्फ राजनीतिक फायदे के लिए
इन ज्वलंत समस्याओं से बेखबर रहे।
यह देश के लोकतंत्र के लिए
एक खतरनाक स्थिति कही जाएगी
और जिस लोकतंत्र की
दुनिया भर में प्रशंसा हो रही
उसे जन प्रतिनिधि कलंकित कर रहे।

आम जनता सब समझ रही है
इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के प्रसार से
वह अपने रहनुमाओं का आचरण
अपनी खुली आँखों देख रही है।

किस तरह उनके व्यवहार से
अपने आपको बचाने की चाल से
आम जनता परेशान हो रही है
और उनके पैसों की
बर्बादी खुलेआम की जा रही है।

यह खेदजनक है
जिन राजनीतिज्ञों पर
देश को दिशा देने का दायित्व है
वे संसद में अपने लिए भी
कोई दिशा नहीं तय कर पा रहे हैं।

ध्यान रहे
जब संसद नहीं चलेगी

तो लोकतंत्र का चलना भी
मुश्किल ही होगा।

याद रहे
टकराव की मानसिकता से
देश और लोकतंत्र का
जितना नुकसान होगा
उससे कम नुकसान
पक्ष-विपक्ष का भी नहीं होगा

लोकतंत्र को बर्बाद करने की
इस साजिश को
हमें समझना होगा
और लोकतंत्र की रक्षा के लिए
कुछ-न-कुछ करना होगा।

कारण कि
राजपाट तो अदलते-बदलते हैं
लेकिन जनता की
न तदबीर बदलती है
न तकदीर बदलती है।

दरअसल इन राजनीतिज्ञों का
एक ही नीतिवाक्य है-
तुम मेरी पीठ खुजलाओ
और मैं तुम्हारी पीठ।

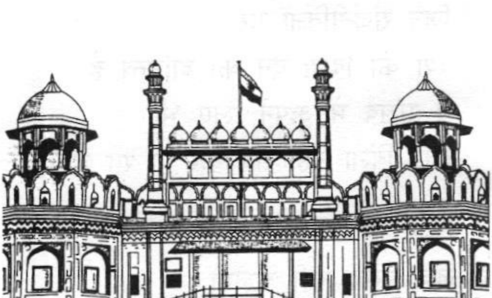

टोपी और पगड़ी

हिंदुस्तान में
शिरोवस्त्र का अर्थ सम्मान,
सामाजिक प्रतिष्ठा,
गौरव का प्रतीक,
मौसम की मार से
बचने का उपाय
और सामाजिक-धार्मिक पहचान।

उल्लास और उत्साह से भरपूर
भव्य और सौम्य
इंद्रधनुषी रंग से परिपूर्ण
इस देश की पगड़ियाँ
कुछ-कुछ साड़ियाँ जैसी नूर।

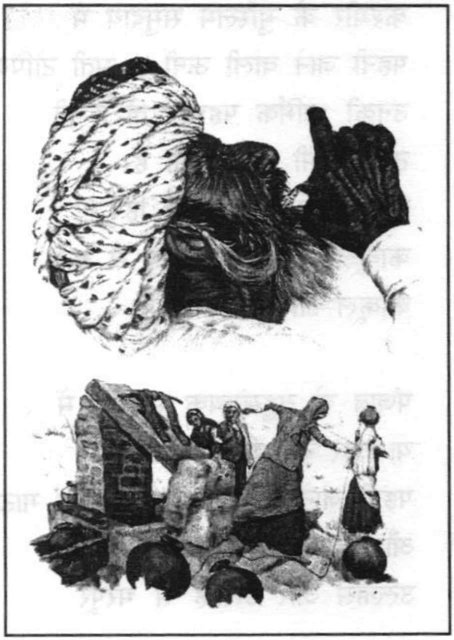

जैसे प्रत्येक प्रांत की अपनी साड़ी
वैसे ही हर प्रांत की अपनी पगड़ी
पर दुर्भाग्यवश
जिस प्रकार शहरों से
साड़ियाँ गायब होती जा रहीं
वैसे ही गाँवों में
पगड़ियाँ भी कम नजर आ रहीं।

पर यह दु:ख की बात है
क्योंकि
इन दोनों पोशाकों के साथ
हमारे इतिहास, रुमानियत
और ऐंद्रिकता जुड़ी हैं।
अब हम चलें प्रांतों की सैर करने
सुदूर उत्तर में स्थित
लेह और लद्दाख में
फर के किनारेवाली
चमड़े की टोपियाँ मिलेंगी
जो रक्षा करतीं
कड़ाके की ठंड से।

कश्मीर के मुस्लिम समुदाय में
पहनी जाने वाली ऊनी व सूती टोपियाँ
उनकी धार्मिक पहचान तो हैं ही
ठंड से भी रक्षा करती हैं।
इसी प्रकार कश्मीर के हिंदू
काकूल बकरी के चमड़े से बनी
काकूल टोपियाँ पहनते हैं।

पंजाब के बहुसंख्यक समुदाय में
या फिर जाट सिखों द्वारा
पहनी जाने वाली कड़क कलफ, गाटा परचर
और अबरख लगी चटख रंगों की
उल्लास और उत्साह से भरपूर

प्रिंटवाली पगड़ियाँ हों
या निहंग सिखों द्वारा
पहनी जाने वाली चटख केसरिया
या रॉयलब्लू रंगों की पगड़ियाँ
वे एक धार्मिक प्रतीक से सजाते हैं।
गुरुद्वारों के ग्रंथी भी
उसी शेड की नीले रंग की
पगड़ी पहनते हैं।
मगर नामधारी सिख
केवल दुधिया सफेद रंग की
सिर से चिपकी हुई
बहुत छोटी पगड़ियाँ पहनते हैं।

हरियाणा में
क्रीम के बेहद करीब
बिना कलफ के उजले रंग की
पगड़ियाँ प्रचलित हैं।

राजस्थानी परंपरा में
उत्साह और उल्लास को अभिव्यक्त करतीं
रंग-बिरंगी पगड़ियाँ
और साफों का घर है
पर मारवाड़ और मेवाड़ के राजसी परिवारों का
साफा बाँधने का अपना
एक अलग ही ढंग है
जो प्रत्येक किलोमीटर पर

और मौसम के साथ
बदल जाता है।
बसंत ऋतु में जहाँ साफों का रंग
खुशनुमा पीला होता है
वहीं फागुन तक आते-आते इनका रंग
सतरंगी या पचरंगी हो जाता है।
दीवाली में गुलाबी रंग
विवाह और अन्य अवसरों पर
लाल बाँधनी के
साफे पहने जाते हैं।

इसी प्रकार गुजरात व महाराष्ट्र में
लोग सुनहरी पगड़ियाँ
ज्यादा पसंद करते हैं।
मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ में
चाहे नाथ पंथी नर्तकों की पगड़ियाँ हों
या बस्तर में धूप से बचने के लिए
मोटा और रफ तौलिया
उनकी आर्थिक स्थिति का
परिचय ही ज्यादा कराती हैं।

जहाँ तक उ0 प्र0 का सवाल है
वाजिद अली शाह के बाद के युग में
चिकनकारी के कामवाली मुलायम,
सफेद मलमल की टोपियाँ,

अब केवल हिंदी फिल्मों के कव्वालों द्वारा
पहनी दिखाई जाती हैं
विवाह के अवसर पर
दूल्हे की पगड़ी पर
मोगरे और चमेली के फूलोंवाला
सेहरा पहनाया जाता है।

बिहार के ग्रामीण इलाकों में
बेहद गर्मी से बचने के लिए
गमछे का ही इस्तेमाल होता है
विवाह में दूल्हे द्वारा
किरमिजी लाल-गुलाबी
और सुनहरी लड़ियोंवाले
सेहरे के साथ पहना जाता है।
सबसे अधिक दर्शनीय पगड़ी
कर्नाटक के कूर्म समुदाय की है
क्रीम रंग की ये पगड़ियाँ
पहले से बँधी हुई
और कड़क होती हैं
जो महान वैज्ञानिक विश्वेशरैया की
क्रीम-सुनहरी पगड़ी की
याद दिलाती हैं।

केरल में बेहद नमी की वजह से
तौलिए का इस्तेमाल किया जाता है

तमिलनाडु और आँध्र प्रदेश में भी
तौलिया ही इस्तेमाल में आता है।

उड़ीसा के आदिवासी अपनी पगड़ी को
मोरपंख से सजाते हैं
और आम लोग
तुर्की टोपी से मिलती जुलती
काले रंग की टोपी पहनते हैं।

❐❐

जनता का जागरण

राज की सनातन परंपरा है
जनता को छलावे, नींद
और बेहोशी में रखना,
जैसे चोर को
उजाला नहीं सुहाता है
वैसे ही शासन को जनता का
जागरण नहीं भाता है।
क्योंकि,
जनता के जागरण से
उनके मनमानी करने पर
अंकुश लगने की
संभावना बढ़ जाती है
इसलिए अच्छे-से अच्छे विचारों को
जनता तक पहुँचाने की
जिम्मेवारी भी हम सबों के कंधों पर
अवश्य चढ़ जाती है,
कारण कि,
विचारों के आधार पर ही
कार्यों की दिशा
निर्धारित की जाती है।

मंहगाई के तेवर

बढ़ रही है देश में
तेजी से जिस प्रकार
वस्तुओं की कीमत
निश्चित ही यह
मध्यम व गरीब वर्गों के लिए
गंभीर चिंता का विषय है
क्योंकि; मंहगाई की मार
सबसे अधिक उसे ही सहनी पड़ती है
और प्रतिकूल असर पड़ता है सबसे अधिक
देश के उपभोक्ताओं पर।
सच मानिए
मंहगाई का वर्तमान चरित्र
एक पहेली बन गया है
मौसम की तरह
और इधर संपन्न वर्गों के पक्ष में
होता जा रहा है
देश की आय का बँटवारा
क्योंकि, आप जानते हैं कि
जो कीमत हैं हम चुकाते
वह किसी न किसी की
आमदनी बन जाती है
और देखते-देखते

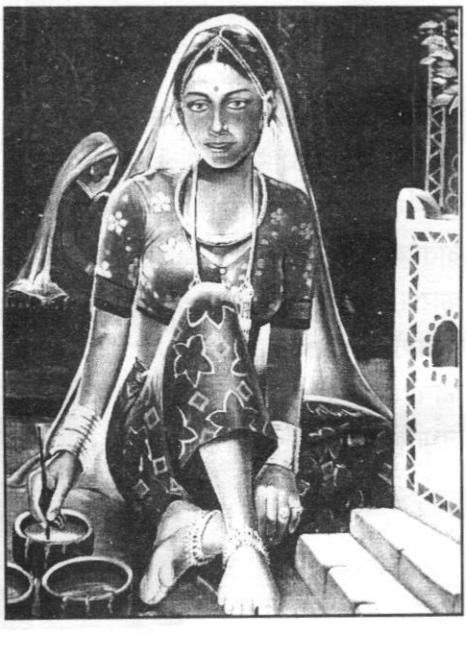

ऊँचे टीले बन जाते हैं
जमाखोरों और कालाबाजारियों के काले धन के।
इसलिए
आज जरूरत है
ढाँचागत समायोजन के तहत
जारी सरकारी नीतियों में
समुचित उपाय करने की।

❐❐

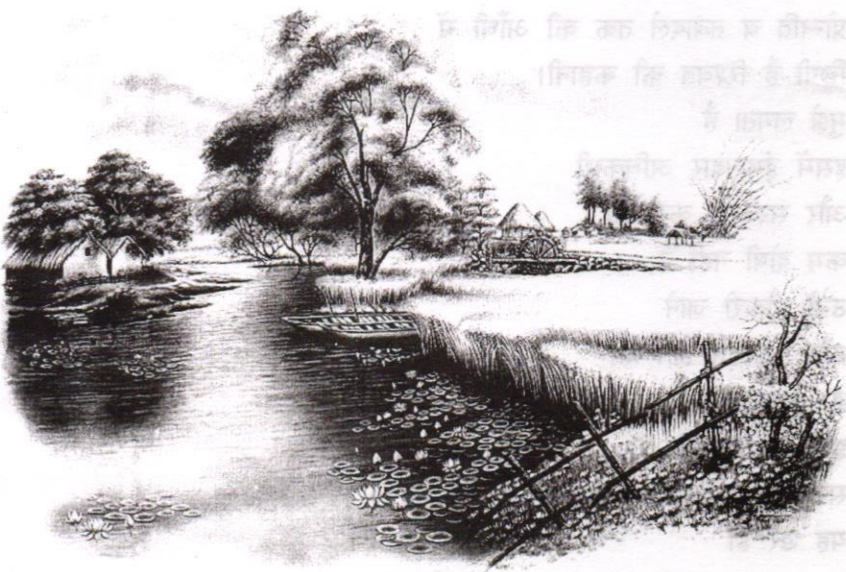

रिश्वत का रोग

रिश्वत का रोग
आज पूरे देश में
असाध्य होता जा रहा है
क्योंकि, आए दिन देश के प्राय:
किसी न किसी क्षेत्र से
भ्रष्टाचार का मामला
प्रकाश में आता जा रहा है।
नकली दवाओं के निर्माण से लेकर
उनके वितरण तक की धाँधली में,
और नौकरी पाने से लेकर
प्रोन्नति व तबादले तक की आँधी में
छिपी है रिश्वत की कहानी।
मुझे लगता है
इसमें ईमानदार अधिकारी
और सरकारी कर्मचारी
कम दोषी नहीं हैं,
उन्हें नौकरी जाने
और प्रताड़ित होने का
डर सताता है ....
इसी का फायदा
सरकारी अधिकारी उठाता है
यह डर ही

भ्रष्टाचार को बढ़ावा देता है।
इसलिए, ईमानदार कर्मचारी को चाहिए
वे बेईमान व भ्रष्ट अधिकारियों की
पोल खोलें
यदि हर विभाग में
दो दर्जन कर्मचारी भी
ऐसा करने की ठान लें
तो हर विभाग के भ्रष्ट अधिकारी
फँस जाएँगे मकरे के जाल में।

❑❑

क्यों मिलाते हैं हाथ

हाथ मिलाना
पूरे विश्व में
अभिवादन का एक जाना-पहचाना
तरीका बन गया है।
हाथ मिलाना
आपसी संवाद का
एक ऐसा तरीका है,
जो मानव सभ्यता के
विकास के साथ-साथ,
विकसित हुआ है।
जब नहीं हुआ था
भाषा का विकास
उस समय मानव
संवाद के लिए
इशारों का ही प्रयोग करता था।
आदिम युग में
दो अजनबी
एक दूसरे को देखकर
आशंकित हो उठते थे
कि
दूसरा व्यक्ति
इसी संदेह को

दूर करने के लिए
प्रारंभ हुआ
हाथ मिलाने का चलन।
यूनान का यह प्रचलन
शुरू में सिर्फ
सद्भावना का प्रतीक था
पर आज इसे
दोस्ती के प्रस्ताव के रूप में
देखा जाने लगा है।
धीरे-धीरे यह चलन
पहुँचा पश्चिम के अन्य देशों में
और उपनिवेशवाद के युग में तो
यह फैल गया
सारी दुनिया में
जिसके द्वारा
अब जताया जाता है
प्यार और अपनापन।

□□

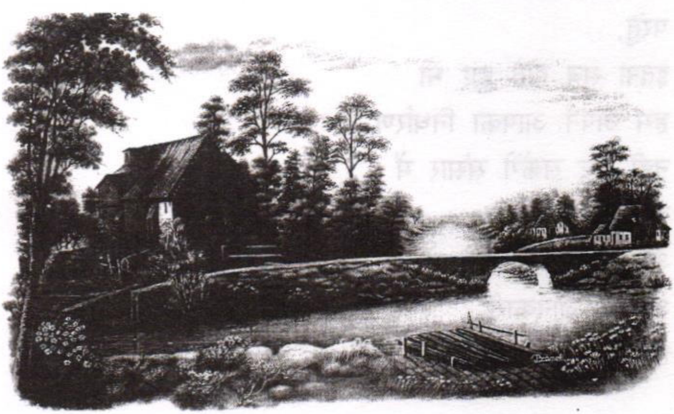

अपने को जानें

कितने भी लक्ष्य
प्राप्त कर लें हम
बाहरी संसार की जानकारियों के
पर आत्मज्ञान नहीं होगा तबतक
जबतक
जान नहीं लेंगे
हम अपने आपको।
ऐसा भी नहीं,
उपयोगिता नहीं है
सांसारिक ज्ञान की,
प्रतिभा निखरती है
जितनी अधिक
जानकारियाँ मिलती हैं
सारे संसार की।
परंतु,
इतना सब होते हुए भी
हम अपने आपका निर्धारण
नहीं कर सकेंगे संसार में
जबतक
अपने स्वयं के बारे में
अभिष्ट जानकारी
हमें नहीं होती है।

इसलिए जरूरी है जानना
जीवन का लक्ष्य
अंत:चेतना की गरिमा,
इच्छा और संकल्पशक्ति का महत्त्व
और तभी संभव है
व्यक्तित्व का विकास।
व्यक्तित्व को ढालने
और उसे दिशा देने का काम
अपनी चेतना ही करती है
इस मर्म को समझें आप।

□□

संसदीय लोकतंत्र

आम लोगों के बीच
राजनीतिक दलों का
मजबूत जनाधार
जरूरी है
संसदीय लोकतंत्र में।
और लोकतंत्र के
बेहतर कामकाज की
गारंटी तभी हो सकती है
जब अपना चरित्र लोकतांत्रिक हो
सत्तारूढ़ दल में।
यही नहीं,
संगठन का चुनाव
आलाकमान के इशारे पर नहीं
गुप्त मतदान के जरिए हो।
पर अहम सवाल यह है
कि क्या भारत में
राजनीतिक पार्टियाँ
अपनी निर्बाध स्वतंत्रता में
इस कटौती के लिए तैयार होंगी?
यदि नहीं
तो आंतरिक लोकतंत्र
क्या अर्थहीन नहीं होगा?

राजनीतिक दलों के
शीर्षस्थ नेताओं द्वारा
लोकतांत्रिक तरीके से
कामकाज होने पर
अनुभवी कार्यकर्ताओं
को मौका तो मिलेगा ही
नई पीढ़ी के लोगों को भी
पार्टी में आने की
राह खुलेगी।
अगर ऐसा नहीं होता
तो कुछ समय के लिए
पार्टी किसी नेता के चमत्कार के आधार पर
भले ही जीत जाए
लेकिन अंतत: दल कमजोर होगा।
इस संदर्भ में
निश्चित रूप से
आज जरूरत है
राजनीतिक दलों के लिए
एक आदर्श आचारसंहिता
बनाए जाने की।
जबतक पार्टियाँ
व्यक्ति विशेष के इर्द-गिर्द चलेंगी
उसमें अप्रजातांत्रिक तरीकों की
शिकायतें आती रहेंगी।
इससे भी बढ़कर

दु:खद स्थिति तो यह है कि
संसदीय लोकतंत्र में
संसद व विधानसभाएँ
अप्रासंगिक होती जा रही हैं
अगर आम आदमी का विश्वास
चुने प्रतिनिधियों व पार्टियों से
उठ गया तो क्या विकल्प होगा?
पड़ोस के ही कुछ देशों पर
एक नजर डालिए
कहीं प्रजातंत्र के लबादे में तानाशाही
और कहीं नग्न तानाशाही
म्यांमार में 1989 में चुनाव के बाद भी
फौजी तानाशाही ने
सत्ता नहीं छोड़ी
विजयी डेमोक्रेटिक लीग के नेता
आंग सान सू ची कभी नजरबंद
तो कभी जेल की सलाखों में बंद
दक्षिण एशिया में
भारत अकेला देश है
जहाँ जनतंत्र
और संसदीय प्रणाली है शेष
बावजूद खामियों के
इनकी कामयाबी
देश की कामयाबी होगी
इसलिए

हमारी इस चेतावनी में
एक अहमियत छिपी है
कि राजनीति में व्यक्ति पूजा
पतन और तानाशाही की ओर
अवश्य ले जाती है।
जो पार्टियाँ प्रजातांत्रिक उसूलों पर
चलने का दावा करती हैं,
उनके लोगों को
व्यक्ति पूजा के खिलाफ
सावधान होने की जरूरत है।

❐❐

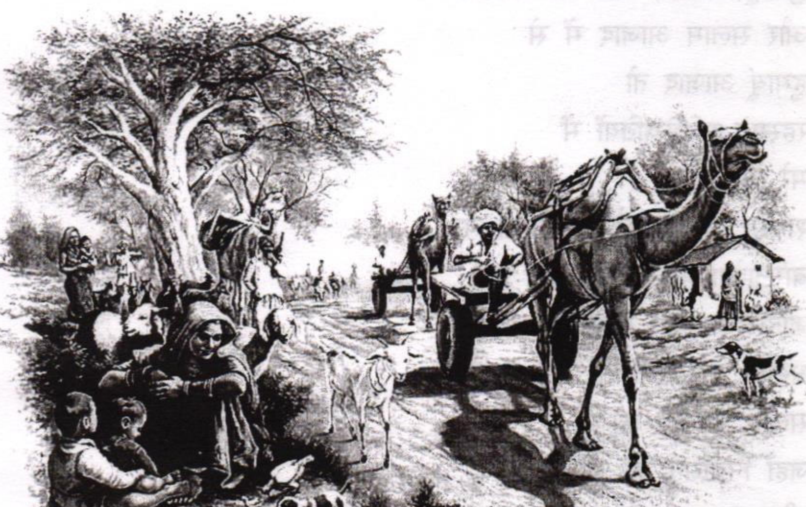

कलम को कुचलते कट्टरपंथ

बांग्ला देश में
साहित्य-संस्कृति के क्षेत्र में
धार्मिक कट्टरपंथियों का हस्तक्षेप
इस कदर बढ़ता गया
कि वहाँ के पाँच बड़े लेखकों का
स्वाधीनतापूर्वक जीना
इधर मुहाल हो गया।
इन लेखकों में
शम्सुर्रहमान, दाउद हैदर,
हुमायूं आजाद, तसलीमा नसरीन
और सलाम आजाद में से
हुमायूं आजाद तो
रहस्मय परिस्थितियों में
मरे पाए गए
शमसुर, दाउद और तसलीमा पर
बांग्लादेश के कट्टरपंथियों द्वारा
जानलेवा हमले किए गए।
धमकी की वजह से
सलाम आजाद को
जहाँ निर्वासन का जीवन
जीना पड़ रहा है

वहीं उनकी किताब
'भांगा मठ' (टूटा मठ) को
बांग्लादेश सरकार द्वारा
प्रतिबंधित कर
उनपर हमला किया जा रहा है।
मैं पूछता हूँ आपसे
किसी लेखक के
खून का प्यासा होना
धर्मांधता और कट्टरता का
क्या यह क्रूरतम
उदाहरण नहीं है?
बांग्लादेश में धर्म आज
क्या रक्त-पिपासु नहीं है?

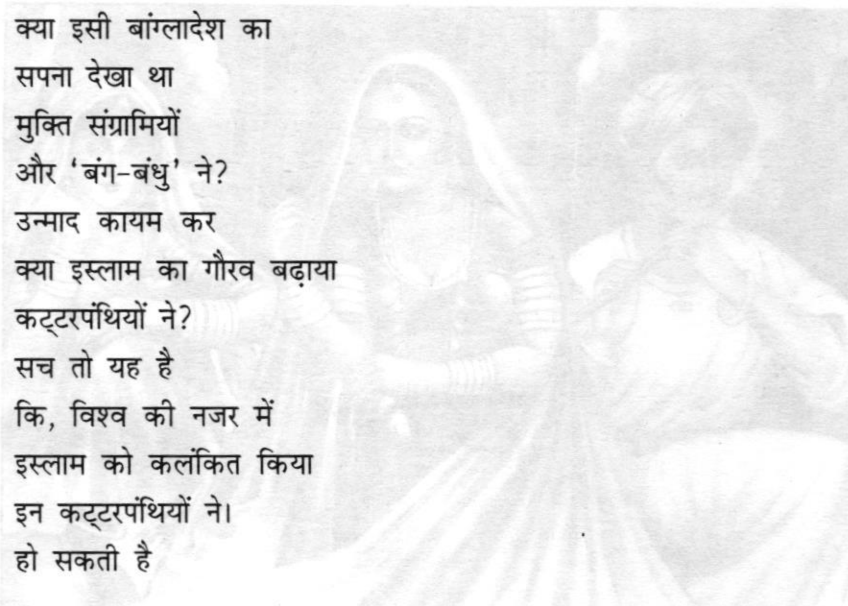

क्या इसी बांग्लादेश का
सपना देखा था
मुक्ति संग्रामियों
और 'बंग-बंधु' ने?
उन्माद कायम कर
क्या इस्लाम का गौरव बढ़ाया
कट्टरपंथियों ने?
सच तो यह है
कि, विश्व की नजर में
इस्लाम को कलंकित किया
इन कट्टरपंथियों ने।
हो सकती है

विचारों से असहमति
तो उसे विचारों से ही
काटा जाए
और शब्दों का जवाब
शब्दों में ही दिया जाए।
यदि नहीं तो,
ऐसे लेखकों के समर्थन में
पूरी दुनिया की लेखक बिरादरी द्वारा
एकजुट होकर
आवाज उठायी जाए।

खतरों से घिरी कलाकार की आजादी

एक कलाकार
और रचनाकार के लिए
आज़ादी
प्राणवायु की तरह होती
बिना हवा के जैसे मनुष्य-जीवन की कल्पना
संभव नहीं होती।
इसलिए
कलाकार और रचनाकार को
सृजन के लिए
आजादी मिलनी चाहिए
और उन्हें स्वच्छंद होकर
अपनी कलम चलानी चाहिए।
किंतु,
बार-बार कलाकार आज
अपनी आजादी बचाने के लिए
नई राहें तलाश रहे हैं
क्योंकि
राजनीति और समाज की ओर से
उसकी आजादी को
बाधित करने के
कई प्रयास चले रहे हैं।
कला के हित में
आज लोकतांत्रिक प्रक्रिया

नहीं दिखती
क्योंकि
लोकमत में
बहुमत की नहीं
अल्पमत की बात
अधिक सुनी जाती।
यही कारण है कि
अधिकांश पुरस्कार में
चयन का आधार
रचनाकार की गुणवत्ता नहीं
चाटूकारिता होती।
सवाल आज
कलाकार की आजादी को
बचाए रखने का है
और पुरस्कार की गरिमा को
बनाए रखने का है।

□□

दागी-दागी का खेल

कहा जाता है
'जिनके घर शीशे के बने होते
वे दूसरों पर
पत्थर नहीं फेंकते'
यह कहावत तो
जोरदार है,
संवाद फिल्मी है
लेकिन वस्तुत: इसमें
राजनीति का सार छिपा है।
यहाँ तो अपने हाथ जल जाएँ
पर पड़ोसी के घर
अँगारे जरूर फेंके जाएँ।
भाजपा दागी को लेकर
हो-हल्ला करती रही
पर अचानक उनके ही घर में
दागी निकल गये।
मजे की बात यह
जिस 'दागी-दागी' का खेल
काँग्रेस ने शुरू किया
राष्ट्रीय राजधानी
और प्रदेश राजधानियों में भी
खेला जाने लगा।
'दागी-दागी' के खेल में

प्रत्येक दल एक दूसरे पर
कीचड़ उछाल रहे
और गड़े मुर्दे उखाड़ कर
जनता के सामने ला रहे।
'दाग़ी-दाग़ी' का यह खेल
कबतक चलेगा
और देश को कितना नीचे ले जाएगा
कहना मुश्किल
पर इतना जरूर है कि
जनता के मुद्दे
जस की तस रह जाएँगे।
एक जमाना वह था
जब दाग़ लगने पर
आदमी मुँह नहीं दिखला पाता था।
वह रोता था
और गाता था -
'लागा चुनरी में दाग़
छिपाऊँ कैसे?........
पर आज चारों ओर
दाग़ ही दाग़ नजर आते हैं
और आदमी सारे के सारे
कीचड़ में लिप्त पाए जाते हैं।
दाग़ी-दाग़ी
सब चिल्लाते हैं,
दाग़ियों को गरियाते,
पर वक्त आने पर

दाग़ियों को गले लगाते हैं।
अब 'दाग़ी-दाग़ी' के खेल
नए चल रहे हैं
जिसमें सब जा रहे हैं
तू भी दाग़ी, मैं भी दाग़ी
हम सब हैं दाग़ी
पर देश पर राज कर
लोकतंत्र की साख पर
काले धब्बे हैं ये दाग़ी
और जनता है वैरागी।

□□

दर्द से कोई वास्ता नहीं

ऐसा नहीं लगता
कि
देश में प्रशासन नामक
कोई चीज है,
आम आदमी की सुरक्षा,
उसकी सुविधाओं का ध्यान रखने वाला
कोई नहीं है।
पूरा सरकारी अमला है
जिसे जनता के करों से पलना है
पर जनता के प्रति जवाबदेही से
सबों का नकरना है।
नाले रुक रहे हैं
सड़कें टूट रही हैं
बिजली भुक-भुक कर रही है
व्यवस्था तहस-नहस हो रही है
गंदगी फैल रही है
पर सरकार सो रही है।
ऐसा लगता है कि
प्रशासन ने
यह तय कर लिया है
उसे कुछ नहीं करना है
सिर्फ कागज़ों मे
योजनाएँ बनानी हैं

थोथी घोषणाएँ जारी रखनी हैं
बजट बनाना है
और उसे साफ कर देना है।
वर्षा हर साल आती है
सड़कें-गलियाँ नदियाँ बन जाती हैं
पर राजनीति करने वालों को
ये सब मुद्दे नहीं दिखते
क्योंकि उनकी नजर तो
केवल कुर्सी पर जाती है
और सचिवालय में बैठने वालों की सोच
सिर्फ संचिकाओं तक सीमित है
जमीनी वास्तविकता से
दूर-दूर तक न तो उनका कोई नाता
और नहीं जनता के दर्द से कोई वास्ता है।
सुशासक सिद्ध कर सकते हैं अपने को
अधिकारी अपनी कर्त्तव्य-निष्ठा से
और भ्रष्टाचार एवं अहंकार को त्याग कर,
किंतु विडंबना यह है कि
आज शासन-प्रशासन का संपूर्ण तंत्र
संवेदनहीन हो चुका है
और आम जनता की चीख-पुकार व पीड़ा का
उनपर जरा-सा भी
असर नहीं होता है
अपने कर्त्तव्य के प्रति वे
थोड़ा-सा ईमानदार नहीं हैं
अपनी कर्त्तव्यहीनता से
उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि

देश के प्रति उनके मन में
तनिक श्रद्धा नहीं है।
आखिर तभी तो
कुंभकोणम स्कूल के हादसे में
कोमल फूल जैसे नन्हे बच्चों को
आग में झुलसते छोड़कर
शिक्षक भाग खड़े हुए
और कहाँ निभा सके वे अपना फर्ज
न तो गुरु का
और न इंसान का।
दरअसल, न तो उन्हें
अपने कर्त्तव्य से नाता
और न जनता के दर्द से कोई वास्ता।

□□

पिता-पुत्र संवाद

पिता-पुत्र संवाद
उपनिषद् से लेकर
प्रेमचंद की कथाओं तक मिलते हैं
जिसमें जीवन-मृत्यु
लोक-परलोक, तर्कज्ञान इत्यादि पर
रुचिपूर्ण विमर्श सुनने को मिलते हैं।
मगर अब तो
पिता और पुत्र
हानि-लाभ के चर्चे करते हैं।
पिछले दिनों एक किशोर पुत्र ने
अपने खिलाड़ी पिता से पूछा-
हे पिता! अब मैं बड़ा हो रहा हूँ,
मूँछ-दाढ़ी के बाल निकल आए हैं
यही वह वक्त है
जबकि हमें
अपने कैरियर के बारे में सोचना चाहिए।
आप पुराने खिलाड़ी रहे हैं
आप बताइए
मैं क्या बनूँ?
क्या मैं फुटबाल का खिलाड़ी बनूँ?

क्या मुझे भारोत्तोलन में भाग लेना चाहिए?
आप कहें तो मैं तैराक बन जाऊँ
अगर हॉकी खेलूँ तो कैसा रहे?
एक बार क्रिकेट की राष्ट्रीय टीम में
शामिल हो जाऊँ तो फिर क्या कहने!
पुत्र की बातें सुन
पिता मूक खड़ा रहा
बड़ी देर सोच-विचार कर बोला-
अरे पुत्र!
तू खिलाड़ी बनकर
क्यों अपना जीवन
नष्ट करना चाह रहा है
बेटा! खिलाड़ी बनने से तो अच्छा है कि
तू किसी खेल संघ का
अधिकारी बनकर
अपनी किस्मत चमका।
खेल में क्या रखा है
खिलाड़ी को जी तोड़ मेहनत करनी पड़ती है
सुबह से शाम तक
कसरत ही कसरत!
अगर छाती फाड़ मशक्कत करके
तू खिलाड़ी बन भी गया
तो फिर खेल अधिकारियों के हाथ की
कठपुतली ही बना रहेगा,

बेटा! मुझे देख
मैंने क्या पाया!
मुझे क्या मिला?
केवल भत्ता पर ही
पूरा जीवन गुजारा।
इस देश में खिलाड़ियों से ज्यादा
अधिकारी मौज करते हैं।
तूने देखा नहीं?
वर्ष 2004 के ओलिंपिक में
खिलाड़ी कम
अधिकारी ज्यादा थे
अधिकारी ने तो खेल मंत्री तक को
भाव नहीं दिए
बेचारे इधर-उधर भटकते रहे।
बेटा बोला -
पिताजी! आपकी बात में दम है
पिता बोला-
बेटा! तू तो सचमुच समझदार है
इस देश में खिलाड़ी बनने का
ज्यादा अर्थ नहीं है
इससे तो अच्छा
तू पुलिस में भरती हो जा
राजनीति में घुस जा।
बेटा बोला -

पिताजी! अब राजनीति, पुलिस में
उन्हीं के लड़के को चांस मिलता है
पिता ने लंबी सांस लेकर कहा-
बेटा! कई जगह तो पूरा का पूरा खानदान ही
खेल संघों में घुसा पड़ा है
खैर! अब तुम खिलाड़ी बनने का
इरादा त्याग दो
इसी में मेरी, तुम्हारी
और तुम्हारी भावी संतति की भलाई है।
पिता की बात सुन
पुत्र ने तुरंत खिलाड़ियों का बाना उतार फेंका
और अधिकारियों वाली पैंट पहन कर गाने लगा-
'साला मैं तो साहब बन गया,
साहब बन के कैसा तन गया........?'

❑❑

सिद्धेश्वर ने कविता के माध्यम से जीवन में रस घोलते हुए उसे गति देने का प्रयास किया है। इनकी सामाजिक प्रतिबद्धता संघर्ष के अनुभवों का परिणाम है जो कविता में यत्र-तत्र अपनी गूँज देता है। 'दहेज का दर्द', 'फिर बसंत आया', 'जीवन का सच', 'वी.आई.पी.', 'स्थिरता', 'एक सवाल' जैसी अनेक रचनाएँ हैं, जो परिस्थिति की विषमता को स्पष्ट करती हैं। इनकी सपाट बयानी कविता को आम आदमी तक ले जाने में समर्थ है। यह कविता के लिए कविता नहीं है इसलिए सिद्धेश्वर स्पष्ट करते हैं -'लेखन शैली की उत्कृष्टता की अपेक्षा लेखन-विषय की गुणवत्ता को मैंने, अधिक महत्त्व देना पसंद किया है और सामाजिक सरोकारों को ही मैंने लेखन-विषय का सर्वोत्तम स्रोत माना है।'

–स्व. मधुर शास्त्री

मानवीय संकट जितना अधिक गहरा होता जाता है और मानवीय संवेदना के क्षय की रफ्तार जितनी अधिक तेज होती जाती है, समाज में और मनुष्यों के वास्ते कविता की अहमियत और अनिवार्यता उतनी ज्यादा बढ़ती जाती है, क्योंकि कविता हर हाल में, मानवीय संवेदना को अभिरक्षा ही नहीं प्रदान करती, प्रत्युत उसे नया जीवन भी देती है। आज के बढ़ते उपभोक्तावाद के प्रभाव से सबसे अधिक क्षतिग्रस्त मानवीय संवेदना ही हुई है। सिद्धेश्वर की कविताएँ इसी क्षतिग्रस्त और लहूलुहान मानवीय संवेदना की प्रतिरक्षा में लड़ी जा रही प्रतिरोधात्मक लड़ाई के घोषणापत्र हैं।

–नचिकेता

कवि परिचय

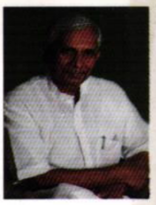

पूरा नाम	: सिद्धेश्वर प्रसाद
संक्षिप्त नाम	: सिद्धेश्वर
पिता का नाम	: स्व. इन्द्रदेव प्रसाद
जन्म तिथि	: 18 मई, 1941
जन्म स्थान	: ग्राम बसनियावाँ, पत्रा. बसनियावाँ भाया-हरनौत, जिला-नालंदा, बिहार (भारत)
शैक्षिक योग्यता	: पटना विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर, सन् 1962 ई०
तकनीकी शिक्षा	: एस.ए.एस., भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग से सन् 1973 ई०
सरकारी सेवा	: भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग में 36 वर्षों तक सेवा कर लेखा परीक्षक के पद से प्रोन्नाति पाते हुए वरिष्ठ लेखा परीक्षा अधिकारी तक पहुँचे।
स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति	: वृहत्तर एवं व्यापक देश हित में 1 जून, 2000 से स्वैच्छिक सेवा निवृत्त।
अभिरुचि	: समाज व साहित्य सेवा एवं पत्रकारिता, राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए संघर्षशील तथा रचनात्मक लेखन से जुड़ाव।
साहित्य सृजन	: गद्य एवं पद्य की अबतक पंद्रह पुस्तकें प्रकाशित तथा पाँच पुस्तकें प्रकाशनाधीन। इसके अतिरिक्त देश व समाज के समसामायिक सामाजिक, साहित्यक तथा राजनीतिक विषयों पर लगभग दो सौ रचनाएँ देश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित तथा आकाशवाणी एवं दूरदर्शन केन्द्रों से प्रसारित। प्रो. रामबुझावन सिंह द्वारा लिखी जीवनी 'सिद्धेश्वर–व्यक्तित्व और विचार' प्रकाशित।
सम्मान	: विभिन्न सामाजिक, साहित्यक एवं सांस्कृतिक संगठनों द्वारा पुरस्कृत व सम्मानित।
	: भारत सरकार के रेल मंत्रालय में रेलवे हिंदी सलाहकार समिति के सदस्य पद पर रहकर राजभाषा हिंदी की सेवा।
	: न्यूयार्क में आयोजित 8वें विश्व हिंदी सम्मेलन में भाग लेकर शैक्षिक सत्रों में आलेख प्रस्तुतीकरण एवं परिचर्या में सक्रिय भागीदारी।
संप्रति	: 1. राष्ट्रीय महासचिव, राष्ट्रीय विचार मंच, दिल्ली 2. संपादक, 'विचार दृष्टि', दिल्ली
संपर्क	: 'बसेरा', पुरन्दरपुर, पटना-800001 (बिहार) फोन : 0612-2228519 'दृष्टि', यू-207, शकरपुर, विकास मार्ग, दिल्ली-110092 फोन : 011-22059410, 22530652 मो. : 09811281443

सरदार पटेल साहित्य प्रकाशन
दिल्ली